भगवान श्री रजनीश की अमृत-वाणी की एक नवीन
हिन्दी मासिक पत्रिका का

—: शुभारंभ :—

★ आ नं द ★

संपादक : स्वामी चैतन्य कीर्ति

२६३, माडल ग्राम, लुधियाना (पंजाब)

मूल्य—एक प्रति : १ रुपया, वार्षिक : १० रुपये

सदस्यता लेकर लाभ उठावें।

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक
त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादन : मा योग क्रांति, स्वामी कृष्ण कबीर

वार्षिक : मूल्य ८ रु.

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र,

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,

मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९

Phone : 327618

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

जून १९७३

युक्रांद

वर्ष - ४ अंक - २३ : २४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
" वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

मई '७३

– मानसेवी सम्पादक मण्डल –

अरविन्द कुमार

सुश्री डा. उर्मिला ★ 'आकुल' राजेन्द्र

आलोक पाण्डे

व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अ नु क्र म णि का

कण-कण अमृत : भगवान श्री के बोध वचन ३

सत्य–शिव–सुन्दर : बोध-कथा ४

युक्रांद—प्रथम चार वर्ष की दिव्य आनंद-लीला : अरविन्दकुमार ५

वह कौन...? : रामाशीर्षसिंह ८

समाज-व्यवस्था पर उद्गार : संकलन—डा० उर्मिला ९

कृष्ण और गीता (गीता अ० ११, प्रवचन–१२) : संकलन—अरविंदकुमार १९

अमृत-पत्र : साधु योग प्रीतम, भीलवाड़ा से प्राप्त ४४

हंसता गाता संन्यास—बिहार राज्य में : योगानन्ददास ४७

गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी : भगवान श्री की वार्त्ता से ५०

नग्नता : संकलन—मा धर्म ज्योति ५१

महावीर मेरी दृष्टि में : संक्षिप्त संकलन—आकुल राजेन्द्र ५९

क्षण जो भूलते नहीं : स्वामी अगेह भारती ६३

गीत : काव्य

अविधि के विधाता : अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र' १८

भगवान श्री के प्रति दो भाव सुमन : साधु ओमप्रकाश ४५

: स्वामी अगेह भारती ४६

आतुर है : मा योग गीता ६४

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

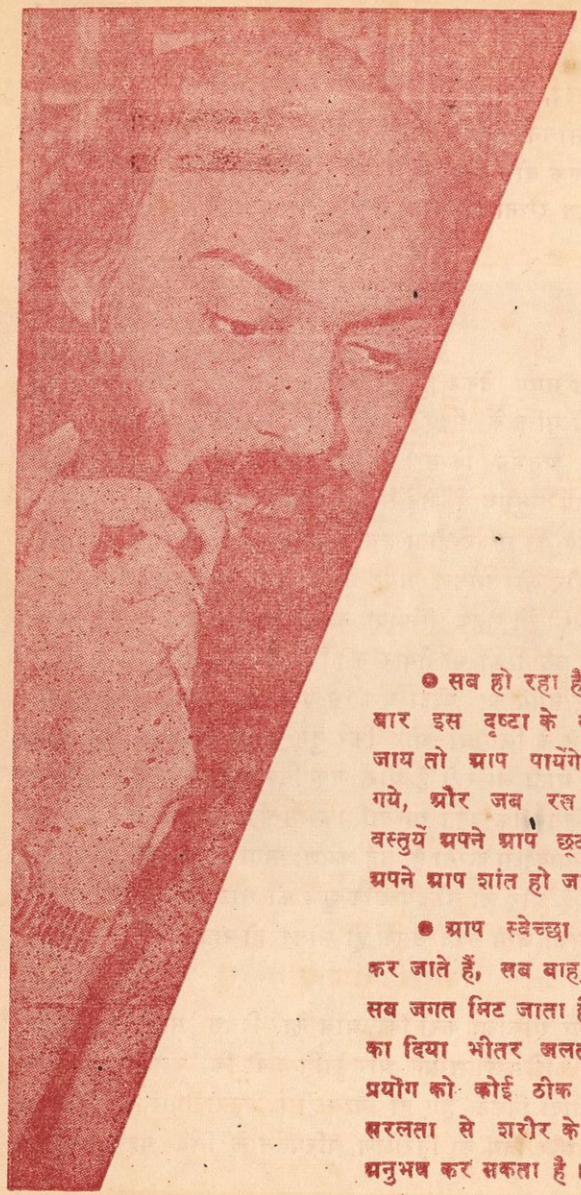

● सब हो रहा है, मैं देखता हूं एक बार इस दृष्टा के साथ सम्बन्ध बन जाय तो आप पायेंगे कि सब रस खो गये, और जब रस खो जाते हैं तब वस्तुयें अपने आप छूट जाती हैं, इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं।

● आप स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश कर जाते हैं, सब बाह्य छूट जाता है, सब जगत मिट जाता है फिर भी चैतन्य का दिया भीतर जलता रहता है, इस प्रयोग को कोई ठीक से करे तो बड़ी सरलता से शरीर के बाहर होने का अनुभव कर सकता है।

★

सत्य, शिव और सुन्दर !

जीवन में सत्य, शिव और सुन्दर के थोड़े से बीज बोओ। यह मत सोचना कि बीज थोड़े से हैं तो उनसे क्या होगा, क्योंकि एक बीज अपने में हजारों बीज छिपाए हुए है। सदा स्मरण रखना कि बीज से पूरा उपवन पैदा हो सकता है।

●

आज किसी से कहा है :

"मैंने बहुत थोड़ा-सा समय देकर ही बहुत कुछ जाना है। थोड़े-से क्षण मन की मुक्ति के लिए दिये और एक अलौकिक स्वतन्त्रता को अनुभव किया। फूलों, झरनों और चांद, तारों के सौन्दर्य अनुभव में थोड़े-से क्षण बिताये और न केवल सौन्दर्य को जाना बल्कि स्वयं को सुन्दर होता हुआ भी अनुभव किया। शुभ के लिए थोड़े-से क्षण दिये और जो आनन्द पाया उसे कहना कठिन है। तब से मैं कहने लगा कि प्रभु को तो सहज ही पाया जा सकता है। लेकिन, हम उसकी ओर कुछ भी कदम उठाने को भी तैयार न हों तो दुर्भाग्य ही है।

स्वयं की शक्ति और समय का थोड़ा अंश सत्य के लिए, शान्ति के लिए, सौन्दर्य के लिए, शुभ के लिए दो और फिर तुम देखोगे कि जीवन की ऊंचाइयां तुम्हारे निकट आती जा रही हैं और एक बिल्कुल अभिनव जगत् अपने द्वार खोल रहा है जिसमें कि बहुत आध्यात्मिक शक्तियां अन्तर्गर्भित हैं। सत्य और शांति की जो आकांक्षा करता है, वह क्रमशः पाता है कि सत्य और शांति उसके होते जा रहे हैं और जो सौन्दर्य और शुभ की ओर अनुप्रेरित होता है, वह पाता है कि उनका जन्म स्वयं उसके ही भीतर हो रहा है।"

●

सुबह उठकर आकांक्षा करो कि आज का दिवस सत्य, शिव और सुन्दर की दिशा में कोई फल ला सके और रात्रि देखो कि कल से तुम जीवन की ऊंचाइयों के ज्यादा निकट हुए हो या नहीं। गहरी आकांक्षा स्वयं में परिवर्तन लाती है और स्वयं का निरीक्षण परिवर्तन के लिये गहरी आकांक्षा पैदा करता है।

★

यु
क्रां
द
★

वह कौन ?

जिसके बारे में कुछ लिखा नहीं जा सकता.. कुछ कहा नहीं जा सकता... कुछ विचारा नहीं जा सकता...वह अनूठा...अनंत...असीम, कौन है ?

वह कौन है, जहां कलम की गति रुक जाती है,...आवाजें मौन हो जाती हैं, विचार खो जाते हैं,...ज्ञान मिट जाता है, भावनायें विलीन हो जाती हैं और आप भी विलीन हो जाते हैं "न कुछ" हो जाते हैं !

सुबह का सूर्य,...संध्या का चन्द्र...निशा के तारे—तीनों की मधुर संगीत लहरी ही जिनका मधुर गान है, नित नवोदित उषा सा ही जो मधुर विहान है—जहां संसार की आंखें नींद से खुलती हैं और एक नूतन प्रकाश, नयी ज्योत्सना, अद्भुत नवनीत पाती हैं,...वह असीम कौन है ?

वह चार अक्षरों का रजनीश नहीं जिसे शब्द बांध लें, आवाज बांध ले, मीत बांध लें !

वह अनन्त है—असीम—अभेद्य—

जिसे मीरा की स्वर लहरी नहीं बांध सकती, कबीर की चौपाइयां और दोहे नहीं बांध सकते...ईसा मसीह के विचार और बुद्ध की वाणी भी नहीं बांध सकती...

जो स्वयं संगीत है अनंत का

जो स्वयं ही सब कुछ है अपना

जो अज्ञान है, अजान है...!!!

★

• रामाशीष सिंह
वैद्यनाथ मेडिकल छात्रावास,
रामदयाल नगर,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

- *खंड-खंड में संस्कृति को तोड़कर हमने बहुत उपद्रव किया है, आगे भविष्य में अगर अच्छी दुनियां बनानी है तो जो संस्कृति होगी, वह सार्वभौमिक होगी।*
- *भाग्य की रेखायें सब गलत हैं – अमीर और गरीब समाज की व्यवस्था का परिणाम है।*

जीवन की समाज व्यवस्था पर भगवान श्री के ओजस्वी उद्‌गार

प्रश्न : क्या आप भारतीय संस्कृति को गलत मानते हैं ?

भगवान श्री :

भारतीय और अभारतीय का सवाल नहीं है। आज तक मनुष्य के जीवन में जिस संस्कृति से हमने व्यवस्था दी है, अगर वह सही होती तो जीवन के सारे दुख, सारी पीड़ाएँ, सारे तनाव, सारी चिन्तायें बिदा होनी चाहिए थीं। पाँच हजार वर्ष के प्रयोग के बाद चिन्तायें निरन्तर बढ़ती चली गई हैं। दुख गहरा होता चला गया है। आदमी ज्यादा पीड़ित, ज्यादा परेशान होता चला गया है। मनुष्य की जो भी समाज व्यवस्था, जो भी सभ्यता, जो भी संस्कृति हमने निर्मित की है, हम उसी के फल हैं। हमने जो धारणायें निर्मित की हैं, जो संस्कार निर्मित किए हैं, उनका ही परिणाम हम हैं। सवाल भारतीय अभारतीय का बिल्कुल नहीं है। सवाल तो यह है कि पुराना ठीक है या हम नए की खोज करें। अगर पुराना ठीक है तो फिर हम पुराने ढांचे में ही जिए चले जाएँ और अगर पुराना ठीक साबित न हुआ हो तो हम नए संस्कारों, नई संस्कृतियों, नई शिक्षाओं, नई दिशाओं की खोज करें। आज तक मनुष्य ने एक ढंग से सोचा था। उस ढंग से सोचकर हमने प्रयोग भी किये हैं। इस जिंदगी को ही आगे दोहराए चले जाना है या कोई बदलाहट चाहिए ? जैसे कि मैं उदाहरण के लिए दो-चार बातें कहूं।

हमने पुराने समस्त इतिहास में सब को राष्ट्रीयता सिखायी। एक

भूगोल की सीमा को मान कर चलते थे। उनका आग्रह था, हम विशिष्ट हैं दूसरों से। भारतीय होना विशिष्ट होना है, चीनी होना विशिष्ट होना है, जापानी होना विशिष्ट होना है। सारी संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं। राष्ट्रीय संस्कृतियों ने कितनी हिंसा और परेशानी दी है! क्या मनुष्यता को, पूरी पृथ्वी को एक होना चाहिए या खंड-खंड में टूट कर ही हमें जिये चले जाना है? पुरानी सब संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं, भविष्य की संस्कृति अंतर्राष्ट्रीय ही हो सकती है। अगर हमने सोच-विचार कर काम किया तो वह भारतीय नहीं होगी, चीनी नहीं होगी, जापानी नहीं होगी, मानवीय होगी, जागतिक होगी, युनिवर्सल होगी। खण्ड-खण्ड में तोड़कर हमने कितना उपद्रव पैदा किया है, आज सोचना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। अगर हम तीन हजार वर्ष का इतिहास देखें तो मालूम यह होता है कि आदमी सदा लड़ता रहा है, राष्ट्र के नाम पर, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर। आदमी लड़ता ही रहा है। पूरे इतिहास की किताब पढ़ने के बाद तो अरस्तू द्वारा दी गई मनुष्य की यह परिभाषा ठीक नहीं लगती कि—आदमी बुद्धिशाली प्राणी है। इतिहास देखकर कहना पड़ेगा कि नहीं—आदमी युद्ध करने वाला प्राणी है। तीन हजार वर्ष सिवाय युद्ध के हमने कुछ भी नहीं किया। सारी शक्ति युद्ध के अस्त्र-शस्त्र खोजने में लगा दी। आज जमीन पर इतनी गरीबी है, इतना दुख है, लेकिन सारी जमीन की साठ प्रतिशत सम्पत्ति नए बम ईजाद करने में संलग्न है—राष्ट्रों के कारण। अगर राष्ट्र न हों तो यह सारी सम्पत्ति मनुष्य को सुखी करने में संलग्न हो सकती है। पुरानी खण्ड-खण्ड पृथ्वी आगे अखण्ड होनी चाहिए।

प्रथम रूसी अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन जब आकाश में उड़ा तो वह पहला आदमी था जिसने पृथ्वी के वायुमण्डल को छोड़ा; उसके लौटने के बाद उसके मित्रों ने पूछा, "ऊपर जाकर तुममें कैसा भाव जगा, पहला भाव कौन-सा उठा? रूस की याद आई?" यूरी गागरिन ने कहा, "क्षमा करना, रूस की याद नहीं आई, याद आई मेरी पृथ्वी की। मेरे रूस की नहीं, क्योंकि उतनी दूरी से देखने से सारी पृथ्वी एक मालूम पड़ी। पहली दफा पता चला कि पृथ्वी एक है। खण्ड सब आदमी के बनाये हुए हैं। पृथ्वी बिल्कुल एक है, कोई खण्ड नहीं है। 'मेरी पृथ्वी', ऐसा भाव उठा।" उसमें रूस भी था, अमरीका भी था, चीन भी था, सब थे और पृथ्वी अखण्ड थी। मनुष्य जितना ऊपर उठेगा, चाहे आकाश में, चाहे अन्तरात्मा में, उतने

खण्ड गिरते चले जायेंगे। जितना ऊपर उठेगा आदमी उतना खण्डों के ऊपर उठेगा। जितना नीचे गिरेगा आदमी उतना खण्डों में गिरेगा।

भारतीय संस्कृति भी बड़ा खंड है। अगर भारत में गांव-गांव घूमें तो पता चलेगा—महाराष्ट्र अलग संस्कृति है, गुजरात अलग संस्कृति है, तमिल अलग, आन्ध्र अलग, बंगाली अलग। और गुजरात में भीतर प्रवेश कर जायें तो पता चलेगा कि सौराष्ट्र अलग, गुजरात अलग। और भीतर घुसते चले जाएं तो पता चलेगा कि सबके अपने-अपने बहुत ही छोटे-छोटे आंगन हैं। इन छोटे-छोटे आंगनों में पृथ्वी को बांट दें अगर हम, तो सिवाय कलह के और युद्ध के क्या पैदा हो सकता है ? इसलिए मैं कहता हूं अब तक की संस्कृतियां भारतीय थीं, जापानी थीं। अगर अच्छी दुनियाँ बनानी है तो आने वाली संस्कृति भारतीय नहीं होगी, जापानी नहीं होगी, पूर्वीय नहीं होगी, पश्चिमी नहीं होगी। संस्कृति होगी मनुष्य की, पूरी पृथ्वी की होगी, सार्वभौमिक होगी, सार्वजनीय होगी, हम सब की होगी। एक पृथ्वी, वन वर्ल्ड, एक जगत की होगी। इसलिए भारतीय संस्कृति और गैर भारतीय के भेद में पड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है।

यह भी ध्यान रहे अब तक की सारी संस्कृतियां मनुष्य के सम्बन्ध में बहुत गहरे अज्ञान पर खड़ी थीं। असल में मनुष्य के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत ही कम था। हम पदार्थ के सम्बन्ध में जितना जानते हैं उतना मनुष्य के सम्बन्ध में नहीं जानते। तीन साढ़े तीन हजार साल पहिले मनु ने एक संस्कृति का आधार रखा। साढ़े तीन हजार साल पहिले आदमी के सम्बन्ध में ज्ञान इतना कम था कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। उस ज्ञान के आधार पर मनु ने कुछ सूत्र बनाए। उस समय के ज्ञान के लिए शायद वे श्रेष्ठतम रहे होंगे। साढ़े तीन हजार वर्ष में आदमी के ज्ञान में अद्भुत गति हुई है। इतना विकास हुआ है कि अगर हम आदमी के पूरे ज्ञान का प्रयोग करें तो बिल्कुल नए ढंग की संस्कृति निर्मित होगी जो कि अतीत में कभी निर्मित नहीं हुई थी।

उदाहरण के लिए एक आदमी सिगरेट पी रहा है। तो पुरानी संस्कृति कहती है सिगरेट पीना पाप है, बन्द करो। सिगरेट मत पियो। किन्तु सिगरेट पीने वाला पीता ही चला जाता है। रोज सिगरेट पीने वाले बढ़ते चले जाते हैं। क्या हम चिल्लाते रहें आगे भी ? नहीं, नया ज्ञान मनुष्य को बताता है कि जो आदमी सिगरेट पीता है या तम्बाखू खाता है उसके शरीर में निकोटीन की

कमी है। और जब तक निकोटीन की कमी है कोई शिक्षा काम नहीं करेगी। निकोटीन पूरा हो, आदमी सिगरेट धूम्रपान से मुक्त हो सकता है।

मेक्सिको में एक बड़ी लेबॉरेटरी पिछले पन्द्रह वर्षों से काम करती रही है और नतीजे बहुत अद्‌भुत हैं। एक बूंद निकोटीन आपके शरीर में डाल दी जाए, फिर आप सिगरेट पियें तो बिल्कुल कचरा मालूम पडेगी। सिगरेट से जो निकोटीन जा रहा है वही आपको जरूरी मालूम पड़ रहा है। उसी के लिए आप सिगरेट पिए चले जा रहे हैं। जो बच्चे सिगरेट पीते हैं, मां-बाप उनका परीक्षण करवा सकेंगे कि उनमें निकोटीन की कमी तो नहीं है। है, तो निकोटीन की कमी पूरी कर दो। सिगरेट पीने वाला बच्चा खबर दे रहा है कि शरीर में कहीं कुछ कमी है। और आप हैरान होंगे कि ८० प्रतिशत लोगों के शरीर में निकोटीन की कमी है। थोड़े बहुत लोगों के शरीर में नहीं है कमी। वह कुछ प्राकृतिक भूल मालूम पड़ती है। बहुत कम लोगों के शरीर में निकोटीन पूरा है। लेकिन जिसके शरीर में निकोटीन पूरा है उसे सिगरेट पीने की इच्छा नहीं होगी। मामला सिर्फ निकोटीन का है और कुछ भी नहीं है। मनुष्य के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान इतना बढ़ा है, कि अब पुरानी बातों को दोहराते चले जाने का कोई अर्थ नहीं है।

हम हजारों साल से मानते रहे हैं कि एक आदमी इसलिए गरीब है क्योंकि उसके भाग्य में गरीब होना लिखा है। किन्तु अब यह बात नहीं मानी जा सकती। किसी के भाग्य में गरीब होना नहीं लिखा है। समाज की व्यवस्था गरीब और अमीर को पैदा करती है। अगर समाज की व्यवस्था बदल जाए तो गरीब और अमीर को मिटाया जा सकता है, बिल्कुल किसी की भाग्य की रेखा को जरा भी छुए बिना। बीस करोड़ लोग रूस में एक भाग्य के हो गए। बीस करोड़ लोग, वही खोपड़ी है, वही हाथ की रेखाएँ हैं। कोई फर्क नहीं पड़ा हाथ की रेखाओं में! हम जानते हैं कि अभी सैकड़ों राजा थे अपने मुल्क में। एक व्यवस्था से वे बिदा हो गए। सैकड़ों राजाओं के हाथ की रेखाएँ एकदम से राजा न होने की रह गई हों ऐसा नहीं हो सकता। हीरोशिमा में एटम बम गिरा। एक लाख आदमी मरे। उनके हाथ की रेखाएँ देखें। किस-किस की मौत आ गई थी एक साथ? हाथ की रेखाएँ झूठी साबित हो गईं। भाग्य की रेखाएं समाज की व्यवस्था की सुरक्षा है। भाग्य की कोई रेखा नहीं है, इस तरह की किसी को

गरीब बनाए, किसी को अमीर बनाए। पुरानी सारी संस्कृति भाग्य पर, कर्म पर और एक-एक आदमी की अपनी जीवन व्यवस्था पर निर्भर थी। समाज की व्यवस्था का कोई बोध नहीं था—सोशल कान्सेप्ट ही नहीं था। कोई समाज की धारणा नहीं थी। क्या हम इसी को दोहराए चले जाएँ? एक भिखमंगे को यही कहें कि तेरा भाग्य है कि तू भीख मांग रहा है और धनवान को समझाएं कि तुम इसे दो पैसे का दान देते चले जाओ क्योंकि तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें दान देने का अवसर मिला है। इससे गरीबी नहीं मिट सकती, आगे भी नहीं मिट सकेगी। और जिस समाज को, जिस जाति को, जिस देश को यह ख्याल हो जाए भाग्य का, वह देश एकदम शक्तिहीन हो जाता है। भाग्य एकदम इम्पोटेन्सी ला देता है, निर्वीर्यता ला देता है। क्योंकि भाग्य से हम खत्म हो गए हैं।

अगर भाग्य नहीं है और
हमें कुछ करना है तो
शक्तियां जागती हैं।

परमात्मा सबके भीतर है और बड़ी शक्तियां लेकर भीतर है। लेकिन भाग्य ने सबके परमात्मा को एकदम शक्तिहीन कर दिया।

पुरानी सारी संस्कृति भाग्यवादी थी। किन्तु भविष्य की संस्कृति भाग्यवादी नहीं हो सकती। मनुष्य की भविष्य की संस्कृति पुरुषार्थ की होगी। अगर गरीबी है तो मिटायेंगे, अगर बीमारी है तो मिटायेंगे, अगर उम्र कम है तो बढ़ायेंगे।

नहीं, अब यह नहीं चलेगा कि एक आदमी मानकर बैठ जाए कि मेरी उम्र सत्तर साल की थी इसलिए सत्तर साल जिया। आदमी की उम्र कितनी ही बढ़ायी जा सकती है। और वैज्ञानिक इस ख्याल में हैं कि कोई भी आदमी कितने ही लम्बे समय तक जीवित रखा जा सकता है। और आज नहीं तो कल हम वह सूत्र खोज लेंगे जिससे आदमी को अन्तहीन काल तक जीवित रखा जा सके।

अमेरिका का एक अरबपति मर गया है पांच वर्ष पहिले अपनी लाश को वैज्ञानिकों को सौंप गया है और कई करोड़ रुपयों का फंड सौंप गया है। साथ में वसीयत कर गया है कि उसकी लाश को फ्रीज करके सुरक्षित रखा जाए तब तक, जब तक मनुष्य को पुनर्जीवित करने और लम्बी उम्र देने का सूत्र न मिल जाए। जिस दिन

मिल जाए उस दिन उसकी लाश को पुनर्जीवित किया जाए। वह लाश सुरक्षित है, उस पर भारी खर्च हो रहा है और वैज्ञानिकों को आशा है कि जिस दिन सूत्र मिल जाएगा उस दिन लाश को पुनर्जीवन दिया जा सकेगा। दुनिया कहां जा रही है? मनुष्य का ज्ञान क्या-क्या खोज रहा है? लेकिन, वह पुराने ढांचे की बुद्धि, क्या करती है? पुरी के शंकराचार्य ने अभी क्या कहा? उन्होंने कहा—चांद पर कोई गया ही नहीं। यह आर्मस्ट्राँग की कपोल कल्पना है। कोई कहीं गया नहीं। यह सब अफवाहें हैं। और अगर पहुंच भी गए हैं तो यह असली चाँद नहीं है। असली चाँद हमारे शास्त्रों का, सूरज से आगे है। दुनियां हंसेगी हम पर, हमारे बच्चे भी कल हंसेंगे हम पर, उसका कारण है। पुरानी संस्कृति मानती थी, सब पा लिया गया, सब जान लिया गया, आगे कुछ जानने को नहीं। उन्होंने जो सूत्र और नियम बनाये है, उस समय के ज्ञान के लिए पर्याप्त थे। लेकिन ज्ञान रोज आगे बढ़ रहा है। जिन्होंने गणना की है वे लोग कहते हैं कि अट्ठारह सौ बरसों में जितना ज्ञान विकसित हुआ था उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विकसित हुआ; और पिछले डेढ़ सौ बरसों में जितना ज्ञान विकसित हुआ था उतना पिछले पन्द्रह बरसों में हुआ है; और पिछले पन्द्रह बरसों में जितना विकसित हुआ है उतना आने वाले डेढ़ बरसों में होगा। इतनी तीव्रता से ज्ञान का विस्तार और फैलाव है, हम जीवन के बाबत इतना जान रहे हैं; जिसकी कि कल्पना करना भी संभव नहीं था। इस सब को ध्यान में रखकर नई संस्कृति निर्मित करनी पड़ेगी। नई संस्कृति का पुराने से कोई बहुत संबंध होने वाला नहीं है। नई संस्कृति के सारे आधार नए होंगे।

बच्चों को हम शिक्षा दे रहे हैं। सारी शिक्षा हमारी बहुत पुराने ढाँचे की है। जो नवीनतम खोज हो गई है उसका प्रयोग अभी मुश्किल मालूम पड़ रहा है। रूस में वे एक नया प्रयोग कर रहे हैं। वे प्रयोग कर रहे हैं, बच्चों को बजाय दिन में शिक्षा देने के रात में शिक्षा (स्लीप टीचिंग) देना ज्यादा उचित होगा। दिन भर बच्चे खेलें, क्योंकि बच्चों का खेलना छूट जाता है, यह बहुत बड़ा नुकसान है। पांच साल के बच्चे को हम स्कूल में भर्ती कर देते हैं। उसका बचपना बुढ़ापे में बदलना शुरू हो गया। पांच साल के बच्चे को स्कूल में भर्ती कर दिया। वह कभी खेल नहीं पाया, आनन्द से नाच नहीं पाया, तैर नहीं पाया, वृक्षों पर चढ़ नहीं पाया, पहाड़ों पर दौड़ नहीं पाया। बस्तों का बोझ ही उसका पहाड़ बन गया। स्कूल की सीढ़ियां उतरना चढ़ना उसका खेल हो गया। पांच छः घन्टे हम पांच

साल के बच्चे को स्कूल में बिठा देते हैं। उसकी सारी बुद्धि को जड़ता उपलब्ध हो जाती है। सारा मन कुंठित हो जाता है। अभी दौड़ने का वक्त था, छलांग लगाने का, कहीं रुकने का नहीं, चंचल होने का। स्कूल की छुट्टी होते वक्त देखा है आपने कि बच्चे कैसे जोर से चिल्लाते स्कूल से निकलते हैं! जैसे किसी कारागृह से बाहर निकले। वह कारागृह हो गया। वह कारागृह है।

लेकिन अभी तक कोई उपाय नहीं था। हमारी समझ के बाहर था कि हम क्या करें। रूस के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने नया प्रयोग सफल कर लिया है, और वे कहते हैं कि बच्चों को दिन भर खेलने दो, कूदने दो, नाचने दो। उनका बचपना मत छीनों क्योंकि बचपन एक बार छीन लिया गया तो दोबारा नहीं मिलेगा। और ध्यान रहे जिसका बचपन छीन लिया गया उसकी जवानी भी थोड़ी अधूरी रहेगी; क्योंकि वे बचपन के जो आधार उसकी जवानी को ताजगी देते, वह अभी रखे ही नहीं गए। कुछ रखे गए, वे बिखर गए। दिन भर खेलने दो, उससे बचपन मत छीनो उनका। रात में उसके सोते में शिक्षा (स्लीप टीचिंग) हो सकती है। रात सोते में उसके कान के पास टेप-रिकार्डर लगाकर उसे सारी शिक्षा दी जा सकती है दो दिनों में जो महीनों में नहीं दी जा सकती। उसमें वे सफल होते जा रहे हैं। निश्चित ही आने वाले स्कूल रात में लगा करेंगे। बच्चे स्कूल में जाकर सो जायें। रात स्कूल में सो जाएं, सुबह लौट आएं। यह संभावनाएं बढ़ती चली जा रही हैं।

अब तक हमारे पास एक ही उपाय है कि अगर मैं कुछ जानता हूं, तो मैं आपको बताऊं तभी आपको पता चलेगा। एक शिक्षक मरेगा तो उसका जो ज्ञान है, स्मृति है वह सब उसके साथ नष्ट हो जायेगा। वैज्ञानिक सफल हो गए हैं इस बात में कि मेमोरी को प्रतिरोपित (ट्रान्सप्लाँट) किया जा सके। एक आदमी मरे तो उसकी सारी स्मृति को नये बच्चे को दिया जा सके। सारी स्मृति का, पूरी स्मृति का ढाँचा निकालकर बच्चों को दिया जा सके। यह इतनी बड़ी संभावना है कि सारी शिक्षा दूसरी होगी, मनुष्य के संबंध दूसरे होंगे।

अब तक हम यही सोचते थे कि हर बच्चे को मां-बाप के पास पाला जाना चाहिए। यह बहुत सोचने-विचारने पर गलत होता चला जा रहा है। और इतनी हैरानी की बात पता चल रही है कि मां-बाप के पास जब तक बच्चे पलते हैं तब तक अच्छे बच्चे पैदा करना मुश्किल है। उसके कई कारण समझ में आते हैं। हम इसके ख्याल में भी नहीं हो सकते। एक

बच्चा अपनी मां के पास बड़ा होता है। बीस साल तक वह एक ही स्त्री को जानता है, अपनी मां को। उसके प्रेम को जानता है। और किसी स्त्री को नहीं जानता और किसी के प्रेम को नहीं जानता। उसके मन में स्त्री का एक इमेज (छाया), एक धारणा बन जाती है। उसके अचेतन मन में स्त्री की एक कल्पना प्रविष्ट हो जाती है जो उसकी मां के आधार पर निर्मित होती है। अगर उसको ऐसी पत्नी मिल जाए जो ठीक उसकी मां जैसी है तब तो यह दाम्पत्य सफल होगा, अन्यथा कलह निश्चित है। और हर आदमी अपनी पत्नी से इसी कलह में पड़ा है। वह मां की खोज कर रहा है, जाने अनजाने में और मां कहाँ मिलने वाली है? और हर पत्नी अपने पिता की खोज कर रही है पति में, लेकिन पिता कहां मिलने वाला है? वे जो बिम्ब उनके मन में बैठ गए पुरुष-स्त्री के, वही खोज चल रही है। इसलिए सारी दुनिया का दाम्पत्य एक कलह है। ऊपर से हम कुछ कहें, ऊपर से हम मुस्कराएं, ऊपर से हम बताएं कि सब ठीक है; लेकिन जो खोज करते हैं, जो खोज में भीतर जाते हैं उन्हें पता है कि चेहरे पर मुस्कराहट है, भीतर वही कलह है।

मैंने सुना है कि एक आदमी की औरत मर गई। वह रो रहा है। औरत की अर्थी बांधी गई और घर के बाहर निकाली जा रही थी। बाहर एक पीपल का दरख्त है। अर्थी उससे टकरा गई। वह औरत मरी नहीं थी, सिर्फ बेहोश थी। टकराने से हिल गई और उसने आवाज दी कि मुझे बांधा हुआ क्यों है? अर्थी उतारनी पड़ी। वह औरत तीन साल और जिन्दा रही। फिर दोबारा मरी। जब अर्थी निकाली जाने लगी, वह आदमी रो रहा है। लेकिन अर्थी उतारने वालों से उसने कहा—भाईयो! जरा सम्हाल कर निकालना, फिर दरख्त से न टकरा जाए।" भीतर छुटकारे का भाव है। कितनी बार पत्नी सोचती है, आत्म हत्या कर लें—नहीं करती, यह दूसरी बात है। कुछ तो कर ही लेती हैं। कितनी बार पति सोचता है, कहां चला जाऊं, मर जाऊं, डूब जाऊं। लेकिन पुरानी संस्कृति इस ढांचे को जरा भी नहीं समझ पाती। बात क्या है? मनस्-शास्त्र कहेगा कि इस दुःख और पीड़ा का मूल कारण यह है कि ये सब जिन्हें खोज रहें हैं वे इन्हें नहीं मिल सकते।

इजरायल में कुछ प्रयोग किए जा रहे हैं। बच्चों को स्कूल में डाल दिया जाता है और नर्सरी में पाला जाता है, किन्तु एक नर्स तीन महीने से अधिक बच्चे के पास नहीं रहेगी, जिसके फलस्वरूप बीस साल तक पहुंचते-पहुंचते बच्चा अनेक स्त्रियों से परिचित हो जायेगा। वह बीच-बीच

में मां से भी मिलता रहेगा, एक दो दिन के लिए घर भी जायेगा; किन्तु वापस लौट आयेगा। इसका परिणाम यह होगा कि बच्चे के मन पर किसी एक स्त्री का फिक्सड इमेज अर्थात गहरा प्रभाव या चित्र नहीं होगा। इससे यह लाभ होगा कि बड़ा होकर यह लड़का किसी भी स्त्री के साथ बिना किसी अड़चन के प्रसन्नतापूर्वक रह सकेगा। इजरायल के बीस साल के इस प्रयोग का परिणाम यह हुआ है कि पति और पत्नी में ऐसे प्रीतिपूर्ण संबंध पैदा हो रहे हैं जैसे पृथ्वी पर कभी कहीं नहीं रहे होंगे।

वास्तव में तथ्य तो यह है कि जब माँ के पास बच्चा पलता है तो मां चौबीस घन्टे प्रेम नहीं दे सकती। वह कभी नाराज होगी, कभी मारेगी, कभी चिल्लाएगी भी। इससे बच्चे के मन में मां के प्रति कभी प्रेम उत्पन्न होगा तो कभी घृणा। अर्थात एक ही व्यक्ति से प्रेम भी करेगा और घृणा भी। इसका स्वाभाविक फल यह होगा कि वह जिससे प्रेम करेगा उसी से घृणा भी करेगा अर्थात जीवन भर उसका मन द्वन्द्व (कान्फ्लिक्ट) में रहेगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि पदार्थ के संबंध में जो खोज होती है, उसका तो हम उपयोग कर लेते हैं; किन्तु आदमी के संबंध में जो खोज होती है, उसके बारे में हम बहुत डरते हैं, क्योंकि खुद के जीवन के संबंध में प्रयोग करने में समस्त जीवन की व्यवस्था को बदलना पड़ता है।

बाकी सब नया हो गया है किन्तु आदमी पुरानी लकीर पर ही चलना पसंद करता है। बाहर तो हमने आईन्स्टीन तक आई हुई दुनिया को स्वीकार कर लिया है और भीतर हम मनु को पकड़े हुये हैं। आईन्स्टीन और मनु के बीच साढ़े तीन हजार साल का अन्तर है और इसलिये हर आदमी के भीतर साढ़े तीन हजार साल का टेन्शन, तनाव पैदा हो गया है। जब तक मनुष्य का जीवन भीतर दुख से भरा है, तब तक संसार में शांति नहीं हो सकती। जब तक एक-एक आदमी शान्त न हो जाये तब तक संसार में शांति असंभव है, क्योंकि संसार वस्तुतः हम सबका जोड़ है।

इस पुरानी संस्कृति को अब बदलना पड़ेगा। पिछले पांच हजार वर्षों से पुराने का प्रयोग तो हो चुका है अब नये का प्रयोग करने की हिम्मत जुटानी चाहिए। हाँ! हो सकता है कि नया भी असफल हो जाये, तो फिर हम और नए की खोज में लग जायेंगे। डर क्या है? निरन्तर खोज का नाम ही तो जीवन है।

● संकलन : डा० उर्मिला, पी-एच.डी
जबलपुर

★ अविधि के विधाता, ★

हे रजनीश जन मन ईश
जन जन के ईश—जन गण ईश
जय रजनीश।

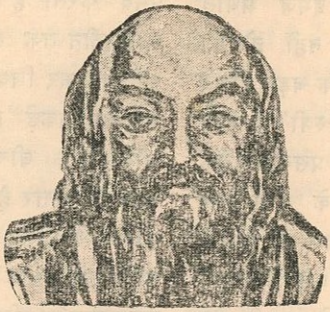

ओ 'अविधि' के विधाता,
यथा 'सत्य' के तथाता।
शरद की पूर्णिमा के चंद्र,
सोडष अंश धारी ईष।
हमारा विनत-नत है शीश
हे योगीश जय रजनीश॥
३

अहंता बन गई रज,
रज भी बच सकी कब।
बना तू पारदर्शी,
'शून्य' का तत्वदर्शी,
हे प्रेमीश! हे अमरीश!
जय रजनीश॥
१

तुझे पाकर ए 'कोहनूर'
हुआ है धन्य जबलपूर।
प्रकाशित विश्व है जिससे
मुखर है मौलिश्री तुझसे।
रमा है चित्त में तू ही
प्रति दिन प्रति निशि
हे रमनीश हे रजनीश
जय जय जय रजनीश॥
२

• *अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'*
बिनेकी, सिवनी (म० प्र०)

कृष्ण और गीता

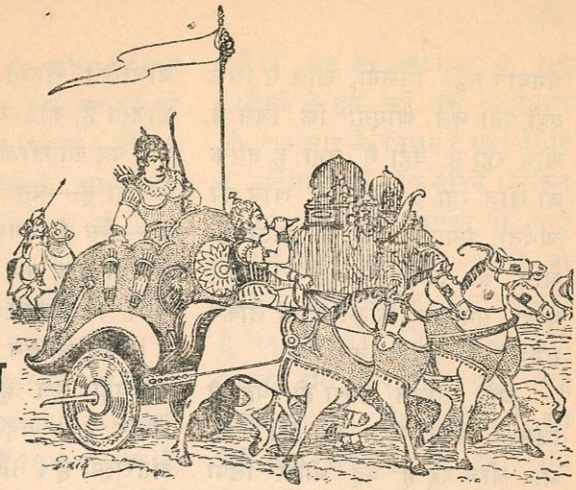

[*गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक १२ वां, श्लोक ५२ से ५५ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।*

युक्तांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के ११ वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युक्तांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे तो—वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय ११ पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

प्रश्न : सृष्टि और सृष्टा यदि एक है और अगर हम स्वयं भगवान ही हैं, तो फिर भगवान को पाने और खोजने की बात ही असंगत है ?

भगवान श्री :

निश्चित ही असंगत है। इससे ज्यादा बड़ी और कोई भूल की बात नहीं कि कोई भगवान को खोजे—क्योंकि खोजा केवल उसी को जाता है जिसे हमने खो दिया हो। जिसे हमने खोया ही नहीं है उसे खोजने का कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन, जब ये पता चल जाय कि मैं भगवान हूं तभी खोज असंगत है उसके पहले असंगत नहीं है। उसके पहले तो खोज करनी ही पड़ेगी। खोज से

भगवान नहीं मिलेगा, खोज से सिर्फ यही पता चल जाएगा कि जिसे मैं खोज रहा हूं वही मैं नहीं हूं बल्कि जो खोज रहा है वही है। खोज की व्यर्थता भगवान पर ले आती है, खोज की सार्थकता नहीं। इसे थोड़ा समझना कठिन होगा लेकिन समझने की कोशिश करें।

यहां खोजने वाला ही वह है जिसकी खोज चल रही है। जिसे आप खोज रहे हैं वह भीतर छिपा है। इसलिए जब तक आप खोज करते रहेंगे, तब तक उसे न पा सकेंगे। लेकिन कोई सोचे कि बिना खोज किए ऐसे जैसे हैं ऐसे ही रह जायें तो उसे पा लेंगे वो भी नहीं पा सकेगा। क्योंकि अगर बिना खोज किए आप पा गए होते, तो आपने पा ही लिया होता। बिना खोज किए मिलता नहीं और खोजने से भी नहीं मिलता। जब सभी खोज समाप्त हो जाती और खोजने वाला चुक जाता है, कुछ खोजने को नहीं बचता, उस क्षण घटना घटती है। कबीर ने कहा है, 'खोजत-खोजत हे सखी, रहो कबिरा हिराय'—खोजते-खोजते वो तो नहीं मिला, लेकिन खोजने वाला धीरे-धीरे खो गया और जब खोजने वाला खो गया तो पता चला कि जिसे हम खोजते थे, वह भीतर मौजूद था। हम जब परमात्मा को खोजते हैं तो ऐसे ही जैसे हम दूसरी चीजों को खोजते हैं। कोई धन को खोजता है, कोई यश को खोजता है, कोई पद को खोजता है। आंखें बाहर खोजती हैं—धन को, पद को, यश को—वैसे ही भगवान को हम बाहर खोजना शुरू कर देते हैं। हमारी खोज की आदत बाहर खोजने की है। उसे भी हम बाहर खोजते हैं। बस वहीं भूल हो जाती है। वह भीतर है। वह खोजने वाले की अंतरात्मा है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपसे कह रहा हूं कि खोजें मत। आप खोज ही कहाँ रहे हैं जो आपसे कहूं कि खोजें मत, जो खोज रहा हो, खोज के थक गया हो—उससे कहा जा सकता है, रुक जाओ। जो खोजने ही न निकला हो, जो थका ही न हो, जिसने खोज की कोई चेष्टा न की हो, उससे यह कहना कि चेष्टा छोड़ दो, नासमझी है। चेष्टा छोड़ने के लिए भी चेष्टा होनी चाहिए।

एक मजे की बात मुझे स्मरण आती है। एक मित्र ने पूछी भी है, उपयोगी होगी। कृष्ण भी कहते हैं कि वेद में मैं नहीं मिलूंगा, शास्त्र में नहीं मिलूंगा, यश में नहीं मिलूंगा, योग में, तप में नहीं मिलूंगा। लेकिन आपको पता है किन लोगों से कहा है उनने। जो वेद में खोज रहे थे, यज्ञ में खोज रहे थे, तप में–योग में खोज रहे थे—उनसे कहा है, आपसे

नहीं कहा। आप तो खोज ही नहीं रहे। बुद्ध ने कहा कि शास्त्रों को छोड़ दो, तभी सत्य मिलेगा। लेकिन, ये उनसे कहा है जिनके पास शास्त्र थे। कृष्णमूर्ति भी कह रहे हैं—शास्त्रों को छोड़ दो सत्य मिलेगा, लेकिन वे उनसे कह रहे हैं, जो शास्त्र पकड़े ही नहीं हैं। आप छोड़िएगा—खाक। जिसको पकड़ा ही नहीं उसको छोड़िएगा कैसे। कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग सोचते हैं, तब तो ठीक है, सत्य तो हमें मिला ही हुआ है, क्योंकि हमने शास्त्र को कभी पकड़ा ही नहीं। जिसने पकड़ा नहीं है, वह छोड़ेगा कैसे? और सत्य मिलेगा छोड़ने से, पकड़ना उसका अनिवार्य हिस्सा है।

आपके पास जो है, वही छोड़ सकते हैं। जो आपके पास नहीं है, उसे कैसे छोड़िएगा? आपकी खोज होनी चाहिए, और जब आप खोज से थक जायेंगे, ऊब जायेंगे, परेशान हो जायेंगे, जब न खोजने का कोई रास्ता बचेगा, न खोजने की हिम्मत बचेगी, जब सब तरफ उदास, टूटे हुए आप गिर पड़ेंगे—उस गिर पड़ने में उसका मिलना होगा। क्योंकि जब बाहर खोजने को कुछ भी नहीं बचता, तभी आंखें भीतर की तरफ मुड़ती हैं और बाहर जब चेतना को जाने का कोई मार्ग नहीं बचता तभी चेतना अंतर्गामी होती है। एक गरीब आदमी से हम कहें कि धन का त्याग कर दे, एक भिखमंगे से हम कहें कि बादशाहत को लात मार दे, भिखमंगे सदा तैयार हैं, बादशाहत को लात मारने। लेकिन बादशाहत कहां है जिसको वो लात मार दें, धन कहां है जिसको वो छोड़ दें। और जिसके पास धन नहीं है, वह धन को कैसे छोड़ेगा, और जिसके पास बादशाहत नहीं, वह बादशाहत को कैसे छोड़ेगा? हम वही छोड़ सकते हैं, जो हमारे पास है।

ध्यान रखें जब मैं आपसे कहता हूं कि परमात्मा को खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है क्योंकि वह खोजने वाले में छिपा है तो मैं ये उनसे कह रहा हूं जो खोज रहे हैं। उनसे नहीं कह रहा हूं जो खोज नहीं रहे हैं, उनसे तो मैं कहूंगा खोजो, जहां भी तुम्हारी सामर्थ्य हो वहां खोजो। मूर्ति में, शास्त्र में, तीर्थ में, जहां तुम खोज सको, खोजो। तुम्हारे मन को थोड़ा थकने दो, खोज व्यर्थ होने दो तभी तुम भीतर मुड़ सकोगे। जिंदगी में छलांग नहीं होती, जिंदगी में एक क्रमिक गति होती है।

आप भी सुन लेते हैं कि जब शास्त्र में नहीं है तो क्या फायदा? एक मित्र ने पूछा है कि जब कृष्ण कहते हैं कि शास्त्र में नहीं है, तो फिर गीता समझाने से क्या होगा? रामायण पढ़ने से क्या होगा? जब

कृष्ण खुद कहते हैं कि वेद में कुछ नहीं है, तो गीता में कैसे हो सकता है ? ठीक कहते हैं, वो मित्र ठीक पूछ रहे हैं कि अगर कृष्ण की ही बात हम मान लें तो फिर गीता में भी क्या रखा है। लेकिन इतनी बात भी आपको पता चल जाए कि वेद में नहीं है, इतना भी गीता से पता चल जाय तो बहुत पता चल गया। अगर शास्त्र पढ़ने से इतना भी पता चल जाय कि शास्त्र बेकार हैं तो काफी पता चल गया। यह भी आपको अपने से कहाँ पता चलता है।

मेरे पास लोग आते हैं, कहते हैं कि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी की भी मत मानो, अपना खोजो। मैं उन लोगों से पूछता हूं कि तुम कृष्णमूर्ति की मानकर चले आये हो, और कृष्णमूर्ति समझाते हैं कि किसी की मत मानो। और तुम मुझे कह रहे हो कि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी की मत मानो, हम अब किसी की बात न मानेंगे, तुमने किसी की मान ली। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि गुरू से कुछ न मिलेगा। तो कृष्णमूर्ति के पास किसलिए गए थे, और अगर इतना भी तुम्हें मिल गया तो कृष्णमूर्ति कम से कम इतने के लिए तुम्हारे गुरु हो गए। और अब तुम बार-बार क्यों जा रहे हो जब कृष्णमूर्ति कहते हैं कि गुरू से कुछ न मिलेगा। तो लगभग कृष्णमूर्ति के सुनने वालों को देखें, चालीस साल से वे ही शक्लें बार-बार बैठी वहाँ दिखाई देती हैं। ये क्या चल रहा है, अगर गुरू से कुछ नहीं मिलता। तो कृष्णमूर्ति से कैसे मिलेगा ? लेकिन अगर इतना भी मिल गया तो भी कुछ कम नहीं है।

ध्यान रहे, जीवन बहुत विरोधाभासी है। गुरुओं ने सदा ही कहा है कि गुरुओं से नहीं मिलेगा लेकिन ये खबर भी उनसे मिली है। शास्त्रों ने सदा कहा है कि शास्त्रों में क्या रखा है, लेकिन ये पता भी शास्त्र से चलता है। चेष्टा करने से ही पता चलेगा कि चेष्टा से नहीं मिलता है। और जब यह पता चलेगा तो यह अनुभव और है।

दो तरह के लोग हैं। मैंने सुना है कि एक बार ऐसा हुआ कि एक तीर्थ यात्रा पर जाने वाले लोगों की भीड़ थी एक स्टेशन पर। सारे लोग जा रहे थे हरिद्वार। शायद अमृतसर का स्टेशन था। एक आदमी कहने लगा कि मैं ट्रेन में तभी चढ़ूंगा जब मुझे उतरना न पड़े और अगर उतरना ही है तो चढ़ने का फायदा क्या...? वो आदमी ठीक तर्क की बात कह रहा था। वो कह रहा था अगर इस ट्रेन में से उतरने में बहुत भीड़-भड़क्का था और घुसना भी बहुत मुश्किल था तो इस ट्रेन में इतनी चढ़ने की दिक्कत क्यों उठानी, हम तो उतरे ही हुए हैं।

और अगर इतनी मुश्किल करके, जान मुसीबत करके भीतर घुसना है तो एक बात पक्की हो जाय कि उतरना तो नहीं पड़ेगा। उसके मित्रों ने कहा, बातचीत में समय मत गवांग्रो, सीटी बजी जा रही है, ट्रेन जा रही है, उन्होंने जबरदस्ती खींचकर ऊपर किया। लेकिन वो चिल्लाता ही रहा, वह ज्ञानी था। वो आदमी चिल्लाता है कि पहले यह तो पता चल जाय कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा। इतनी मुश्किल से चढ़ रहे हैं, हाथ पैर टूटे जा रहे हैं, हड्डियां टूटी जा रही हैं, तुम मुझे खींचे जा रहे हो, ये तो बताओ कि इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा। सबने उसे भीतर बिठा लिया और कहा इसे पीछे समझ लेंगे। खैर, वो आदमी अंदर हो गया फिर हरिद्वार पर उतरने की नौबत आ गई। वो आदमी फिर कहने लगा कि मैंने पहले ही कहा था कि अगर उतरना ही है तो चढ़ने से क्या मतलब था, हम तो उतरे ही हुए थे। उसके मित्रों ने कहा कि गाड़ी जाने को है, नीचे उतरो। वो कहने लगा कि आप हो किस तरह के लोग, कभी चढ़ने के लिए खींचते हो, कभी उतरने के लिए खींचते हो। और तुम्हें, इतनी भी बुद्धि नहीं आती है कि तुम दोनों विरोधी काम चढ़ने-उतरने के एक साथ करते हो। मैं तो पहले ही उतरा हुआ था। तभी एक बूढ़े आदमी ने कहा—तू पहले उतरा हुआ था अमृतसर पर, अब तू उतर रहा है हरिद्वार पर। और इन दोनों में फर्क है।

एक आदमी है जिसने शास्त्रों को छुआ ही नहीं है, वह भी बड़ा प्रसन्न हो जाता है सुनकर कि शास्त्रों से कुछ नहीं मिलेगा। उसकी प्रसन्नता यह नहीं है कि वो समझ गया। उसकी प्रसन्नता यह है कि अच्छा, जो शास्त्र पढ़-पढ़ के ज्ञानी बने जा रहे थे, वो भी कोई ज्ञानी नहीं हैं। मैं पहले से ही उतरा हुआ हूं। अगर तुमको उतरना ही है तो हम पहले से ही उतरे हुए हैं। अगर एक बार फिर ज्ञान को छोड़ कर अज्ञानी बनना ही पड़ेगा तो हम तो अज्ञानी पहले से ही हैं। तो तुमने कमाई ही क्या की, तुमने व्यर्थ समय गवांया। और नाहक अकड़ रहे थे कि शास्त्र पढ़ लिया, वेद के ज्ञाता हो गए, लेकिन उसको पता नहीं कि एक अज्ञान—ज्ञान के पहले का है और एक अज्ञान वो है जो ज्ञान के बाद आता है। ज्ञान के बाद के अज्ञान से, ज्ञान के पहले के अज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। कहां अमृतसर, कहां हरिद्वार! दोनों में बड़ी यात्रा का फर्क है।

ज्ञान के पहले जो अज्ञान है, वह सिर्फ अज्ञान है। ज्ञान के बाद जब ज्ञान को भी कोई छोड़ देता है तब जो अज्ञान घटित होता है, वह चित्त

की निर्दोषिता है, निर्भारता है। वह अज्ञान नहीं है। वही ज्ञान है। सुकरात ने कहा है "जब कोई जान लेता है तो वो कह देता है कि अब मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।" इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अन्धकार में, ज्ञानी महा अन्धकार में भटक जाते हैं। तो फिर बचेगा कौन ? वो बचेगा जो ज्ञान के बाद आने वाले अज्ञान को उपलब्ध होगा। जो नहीं खोजते वो तो परमात्मा को पाते ही नहीं, जो खोजते हैं, वो और दूर निकल जाते हैं। लेकिन खोज के बाद भी खोज के छोड़ देने की एक घटना है, वे उसे पा लेते हैं।

ये तीन बातें हैं। आप जो कि खोज ही नहीं रहे हैं, साधु-संन्यासी, पंडित, खोज रहे हैं, कोई तप में, कोई शास्त्र में, कोई कहीं और। और एक तीसरा ज्ञानी : परमहंस, जो खोज भी छोड़ दिया, शास्त्र भी। जो अब बैठ गया, जैसा है वैसा ही छोड़ दिया। अब कहीं भी खोजने नहीं जाता। जो न जाने वाली चेतना है, स्वयं में खो जाती है। जो न जाने वाली चेतना है, स्वयं में प्रज्जवलित हो जाती है। कहीं न जाने वाली चेतना नया आयाम पकड़ लेती है। आपने सुनी हैं : दस दिशायें। जो जानते हैं, कहते हैं : ग्यारह दिशाएं हैं। दस दिशायें बाहर हैं और एक दिशा भीतर है। जब दसों दिशाएं बेकार हो जाती हैं, तब चेतना भीतर की तरफ मुड़ती है। जब और कहीं न मिलता हो, तब आदमी अपने में खोजता है। आखिरी समय में, अंतिम क्षण में आदमी अपने में खोजता है। तो अगर आपको पता चल गया कि आप भगवान हैं, तब तो बात ही खतम हो गई, खोज व्यर्थ है। अगर, मेरे कहने से मान लिया तो अभी खोज करनी पड़ेगी। मेरे कहने से मान ली गई बात आपका अनुभव नहीं है। मेरे कहने से खोज शुरू होगी, अनुभव नहीं हो जाएगा और ट्रेन में अभी चढ़ना होगा। और अगर आपकी यह जिद हो कि उतरना ही पड़ेगा बाद में तो हम चढ़ेंगे ही नहीं तो आपकी मर्जी। लेकिन फिर आप समझ लेना कि अमृतसर पर ही खड़े हैं। फिर हरिद्वार की तरफ गति नहीं होगी। चढ़ें भी, उतरें भी। सीढ़ियों पर चढ़ना भी पड़ता है, उतरना भी पड़ता है। जो सीढ़ियों पर नहीं चढ़ता, वह नीचे की मंजिल पर रह जाता है। जो फिर जिद करता है सीढ़ियों से नीचे नहीं उतरूंगा, वह सीढ़ियों पर रह जाता है। वह भी ऊपर की मंजिल पर नहीं पहुंचता। ऊपर की मंजिल पर वह पहुंचता है जो सीढ़ियों पर चढ़ता है फिर सीढ़ियों को पकड़ नहीं लेता, सीढ़ियों को छोड़ भी देता है।

बुद्ध ने कहा है कुछ ना-समझ मैंने

देखे हैं : गाँव में। जो नदी पार किए थे नाव में बैठकर। और फिर उन्होंने सोचा कि जिस नाव ने उन्हें नदी पार करा दी उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं। तो कुछ दिन तो वो नाव पर रहे, लेकिन नाव पर कितने दिन रह सकते थे। भोजन की तकलीफ हो गई, सोने की तकलीफ हो गई और फिर उन्होंने सोचा कि नाव को सिर पर लेकर चल पड़ें। क्योंकि जिस नाव ने हमें पार करवा दिया, उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं, और अगर छोड़ना ही था तो हम चढ़े ही क्यों ? तो वे नाव को सिर पर लेकर गांव में निकले। गाँव के लोगों ने पूछा तुम ये क्या कर रहे हो ? बुद्ध उस गांव में थे। उन्होंने कहा : ये बड़े ज्ञानी हैं, पंडित हैं। अज्ञानी तो उसी पार रह गए, वो नाव पर ही नहीं चढ़े। लेकिन ये ज्ञानी हैं। इनकी मुसीबत यह है कि ज्ञान इनके ऊपर चढ़ गया है, नाव उनके ऊपर चढ़ गई, अब ये उसको छोड़ नहीं पा रहे। अब ये शास्त्र को ढो रहे हैं। ये तो और मूढ़ता हो गई। इसलिए उपनिषद ठीक कहते हैं : अज्ञानी भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महा-अंधकार में भटक जाते हैं। फिर से अज्ञानी होना जरूरी है। लेकिन वो फिर से अज्ञानी होना, बड़ी और बात है। खोज छोड़नी पड़ती है, लेकिन खोज करने के बाद। संसार छोड़ना पड़ता है, लेकिन जानने के बाद। त्याग मूल्यवान है, लेकिन भोग के बाद। अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि भक्त अपनी पसंद के अनुसार इष्ट का साकार दर्शन कर लेते हैं। श्री रामकृष्ण देव ने काली का किया या मीरा ने कृष्ण का किया या अर्जुन ने चतुर्भुज रूप कृष्ण का। क्या इस अवस्था को परम ज्ञान की अवस्था मान सकते हैं ?

ये परम ज्ञान की पहले की अवस्था है, परम ज्ञान की नहीं। क्योंकि परम ज्ञान में तो दूसरा बचता ही नहीं। न काली बचती है, न कृष्ण बचते हैं, न क्राइस्ट बचते हैं। ये आखिरी है, सीमांत। ये आखिरी है, संसार समाप्त हो गया, अनेकता समाप्त हो गई, सब समाप्त हो गया, लेकिन द्वैत अभी भी बाकी रह गया। भक्त है और भगवान। अभी भक्त भगवान नहीं हो गया। अभी भक्त है और भगवान। अभी दो बाकी हैं। सारा जगत खो गया, विविध रूप खो गए। सारे रूप दो में समाविष्ट हो गए। सारा जगत दो रह गया, भक्त है और भगवान है। सब तिरोहित हो गया लेकिन दो अभी बाकी हैं। ये परम ज्ञान के ठीक पहले की अवस्था है। जैसे १०० डिग्री पर पानी उबलता है, अभी भाप नहीं बना। भाप बनने के करीब है, एक क्षण और पानी भाप बन जाएगा।

ठीक ये १०० डिग्री अवस्था है, बस जरा सी देर है। जरा सी देर है कि भगवान भी खो जाएगा और भक्त भी खो जाएगा और एक ही बच रहेगा। उसको फिर कोई चाहे तो भगवान कहे चाहे कोई भक्त कहे, चाहे कोई नाम न दे, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बच रहेगा : अनाम। वह अद्वैत की अवस्था है। अद्वैत परम ज्ञान है। परम ज्ञान की हमारी परिभाषा बड़ी अनूठी है। परम ज्ञान हम तब कहते हैं जब जानने वाला न बचे, जाने, जाने वाला न बचे। दोनों खो जायें। दृश्य और दृष्टा खो जायें। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जायें। मात्र ज्ञान रह जाए। सिर्फ जानना मात्र रह जाए। न तो उस तरफ कुछ हो जानने को, न इस तरफ कुछ हो जानने वाला। तब सिर्फ ज्ञान रह जाए। उस ज्ञान की आखिरी घड़ी को परम ज्ञान कहा है।

महावीर ने उसे कैवल्य कहा है। कैवल्य का अर्थ है : बस केवल ज्ञान। कुछ नहीं बचा। वो जो खोज रहा था, वो भी नहीं है अब। जिसको खोज रहा था, वो भी नहीं है अब। दोनों का द्वन्द्व विलीन हो गया। अब सिर्फ होना मात्र 'जस्ट-बीईंग', जस्ट कान्सी-असनेस, सिर्फ होश भर बचा है। वो दोनों छोर खो गए हैं। दोनों छोरों के बीच में जो ज्ञान की घटना घटी है, वही बची है।

तो काली का दर्शन परम ज्ञान नहीं है, कृष्ण का दर्शन भी परम ज्ञान नहीं है। परम ज्ञान के पहले की आखिरी सीढ़ी है जहां से आप सीढ़ियां छोड़ देते हैं।

ऐसा हुआ—रामकृष्ण के जीवन में कि रामकृष्ण तो काली के भक्त थे, अनूठे भक्त थे। उस जगह पहुंच गए जहां काली और वो ही बचे। लेकिन तब उनको एक बेचैनी होने लगी कि ये तो द्वैत है और अद्वैत का अनुभव कैसे हो। अभी भी दो तो हैं ही, मैं हूं, काली है। अभी दो की, दुई नहीं खोती। अभी दो तो बने ही रहते हैं। तो वे एक अद्वैत गुरु की शरण में गए। उस अद्वैत गुरु को कहा उन्होंने कि अब मैं क्या करूं। ये दो अटक गए हैं, इसके आगे अब कोई गति नहीं होती। अब दिखाई भी नहीं पड़ता कि जाऊं कहां, शांत हो जाता हूं, काली खड़ी हो जाती है, मैं होता हूं, काली होती है। बड़ा आनंद है। गहन अनुभव हो रहा है। लेकिन दो अभी बाकी हैं, एक आखिरी अभीप्सा मन में उठती है कि एक कैसे हो जाऊँ। तो जिस गुरु से उन्होंने कहा था, फिर तुम्हें थोड़ी हिम्मत जुटानी पड़ेगी। और हिम्मत कठिन है। और मन को चोट करने वाली है। गुरू ने कहा कि भीतर जब काली खड़ी हो तो भीतर तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना। रामकृष्ण ने कहा कि क्या कहते हैं... तलवार उठाकर दो टुकड़े...काली

के। ऐसी बात ही मत कहें...ऐसा सुनने से मुझे बहुत दुख-पीड़ा होती है। तो गुरू ने कहा कि फिर तू अद्वैत की फिकर छोड़ दे, क्योंकि अब काली ही बाधा है। अब तक काली साधक थी, साधन थी, सहयोगी थी। अब काली ही बाधा है। अब सीढ़ी छोड़नी पड़ेगी। अब तू सीढ़ी को मत पकड़। माना कि इसी सीढ़ी से तू इतनी दूर आया, इसलिए मोह पैदा हो गया। आसक्ति बन गई। हमारी आसक्ति संसार में ही नहीं बनती, हमारी आसक्ति हमारी साधना के उपाय से भी बन जाती है।

अब किसी जैन को कहो कि महावीर के दो टुकड़े कर दो। किसी बौद्ध को कहो कि बुद्ध के दो टुकड़े कर दो, तो बहुत बैचेनी होगी कि क्या बातें कर रहे हैं। ये कोई बात हुई धर्म की, आध्यात्म हुआ कि ये तो घोर नास्तिकता हो गई। लेकिन रामकृष्ण जानते थे कि जो आदमी कह रहा है, वह ठीक तो कह रहा है। ये मेरी मजबूरी है कि मैं न तोड़ पाऊं, लेकिन उस गुरू ने कहा कि तू मेरे सामने बैठ और ध्यान कर। और जैसे ही काली भीतर आए, उठाना तलवार और काट देना। रामकृष्ण ने कहा लेकिन मैं तलवार कहां से लाऊंगा। उस गुरू ने बड़ी कीमती बात कही कि तू काली को ले आया भीतर, तलवार न ला सकेगा। काली कहां थी पहले। तू काली को ले आया तो तलवार तो तेरे बायें हाथ का खेल है। जैसे काली को तूने कल्पना से अपने भीतर विराजमान करके, साकार कर लिया है, ऐसे ही उठा लेना तलवार को। रामकृष्ण ने कहा तलवार भी उठा लूंगा तो तोड़ नहीं पाऊंगा। मैं भूल ही जाऊंगा, तुमको भी भूल जाऊंगा, तुम्हारी बात को भी भूल जाऊंगा। काली दिखी कि मैं तो मुग्ध हो जाऊंगा, मैं तो नाचने लगूंगा, तलवार नहीं उठा सकूंगा। तो गुरु ने कहा कि मैं कुछ करूंगा बाहर से। एक कांच का टुकड़ा गुरु उठा लाया और रामकृष्ण को कहा कि जब मैं देखूंगा कि तुम मस्त होने लगे, डोलने लगे—क्योंकि भीतर जब काली आती तो रामकृष्ण डोलने लगते, हाथ पैर कंपने लगते, रोंगटे खड़े हो जाते और चेहरे पर एक अद्भुत आनंद का भाव मस्ती छा जाती। तो उस गुरू ने कहा कि ठीक इसी क्षण मैं तुम्हारे माथे पर कांच से काट दूंगा, चमड़ी को काट दूंगा और भीतर जब काटने का ख्याल आ जाए तो चूकना मत उठाकर तलवार तू भी दो टुकड़े कर देना। और ऐसा ही किया गया। गुरु ने कांच से काट दी माथे की चमड़ी जहां तृतीय नेत्र है—सबसे नीचे तक दो टुकड़े कर दिए—खून की धार बह पड़ी। रामकृष्ण को भीतर होश आया तो उठाकर काली के दो टुकड़े कर दिए। रामकृष्ण और दो टुकड़े ! ये भक्त

की आखिरी हिम्मत है। इससे बड़ी हिम्मत नहीं है जगत में और जो इस हिम्मत को न जुटा पाए, वह अद्वैत में प्रवेश नहीं कर पाता। काली विसर्जित हो गई, रामकृष्ण अकेले रह गए। या कहें कि चैतन्य मात्र बचा, छः दिन बाद होश में आए। आंखें खोलीं तो पहले जो शब्द थे : 'कृपा गुरु की, कि आखिरी बाधा भी गिर गई।' लास्ट बेरिअर फेल डाउन।

रामकृष्ण के सामान्य भक्तों ने इस उल्लेख को छोड़ दिया है, क्योंकि ये उल्लेख साधना के विपरीत पड़ता है। बहुत थोड़े से भक्तों ने इसका उल्लेख किया है, बाकी ने छोड़ दिया। इतनी मेहनत की काली के लिए रोए-नाचे-गाए-चिल्लाए-प्यास से भरे, जीवन दांव पर लगाया, फिर जब काली को पा लिया तो टुकड़े किए। लिखने वाले भक्तों को बड़ा विपरीत मालूम पड़ा, तो अधिक भक्तों ने इसे छोड़ दिया। लेकिन ये उल्लेख बड़ा कीमती है और जिनको भी भक्ति के मार्ग पर जाना है उन्हें याद रखना है कि जिसे हम आज बना रहे हैं, उसे कल मिटा देना पड़ेगा। आखिरी छलाँग सीढ़ी से भी उतर जाने की, नाव भी छोड़ देने की, रास्ता भी छोड़ देने का—विधि भी छोड़ देने की। तो जो रामकृष्ण को हुआ है, काली के दर्शन में वो अंतिम नहीं है। अंतिम तो ये हुआ जब काली भी खो गई। जब कोई प्रतिमा नहीं रह जाती मन में। कोई शब्द नहीं रह जाता, कोई आकार नहीं रह जाता। जब सब शब्द शून्य हो जाते हैं, सब प्रतिमायें लीन हो जाती हैं—आखिर में सब आकार निराकार में डूब जाता है, जब मैं न बचता है न तू बचता है।

एक बहुत बड़े विचारक, यहूदी चिंतक, दार्शनिक ब्रूवर ने एक किताब लिखी है आई एन्ड दाऊ। इस सदी में दो चार लिखी गई अत्यन्त कीमती किताबों में से एक है। और इस सदी में हुए दो चार कीमती आदमियों में मार्टिन ब्रूवर एक है। ब्रूवर ने लिखा है कि अंतिम जो अनुभव है परमात्मा का आई एन्ड दाऊ। मैं और तू। लेकिन ये अंतिम नहीं है। ये अंतिम के पहले का है। लेकिन यहूदी विचारक हिम्मत नहीं जुटा पाता आखिरी छलांग की। यही फर्क है : यहूदी, इस्लाम, ईसाइयत ये तीनों में से कोई भी आखिरी हिम्मत नहीं कर पाते। बिल्कुल आखिरी तक जाते हैं, लेकिन दो को बचा लेते हैं। फिर दो को छोड़ने की मुश्किल हो जाती है। इसलिए इस्लाम कभी भी राजी नहीं हो पाया कि मंसूर जो कहता है अनल-हक 'मैं ब्रम्ह हूं' ये बात ठीक है क्योंकि ये तो बात आखिरी हो गई। ये तो परमात्मा के साथ एक होने की बात ठीक नहीं है, अधार्मिक है। इसलिए मंसूर की हत्या कर दी गई।

इस्लाम कभी सूफियों को स्वीकार करने को राजी नहीं हो पाया पूरी तरह, हालांकि सूफी ही इस्लाम की गहनतम बात है। वहीं उनका रहस्य है, वहीं उनकी आत्मा है, लेकिन इस्लाम राजी नहीं हो पाया, क्योंकि इस्लाम अंतिम के पहले रुक जाता है। इस्लाम-यहूदी–ईसाइ-परमात्मा और भक्त पर ही रुक जाते हैं। लेकिन इससे कोई अड़चन नहीं आती, क्योंकि जो आदमी यहां तक पहुंच जाता है—वो नहीं रुकता, इसे जरा समझ लें। इस्लाम भला रुक जाता हो, लेकिन इस्लाम को मानके भी जो आदमी आखिरी जगह पहुंच जाएगा, उसको तो फिर ख्याल में आ जाता है कि अब ये आखिरी बात और रह गई! संसार का आखिरी हिस्सा और रह गया, इसीलिए छोड़ें। वो आखिरी छलांग लगा लेता है। सूफी वही मुसलमान हैं जिन्होंने आखिरी छलांग लगा ली। मुसलमान की धर्म की जो व्यवस्था है वो दो पर रुक जाती है। आम धर्म की व्यवस्था दो पर रुका देती है। आम भक्ति के जितने भी दर्शन हैं वो दो पर रुक जाते हैं। परम ज्ञान वो नहीं है, लेकिन उसके बिना भी परम ज्ञान नहीं होता, ये ख्याल में रखना। उससे सौ अंश डिग्री तक पानी उबल जाता है, और आखिरी छलांग आसान हो जाती है। जिनमें हिम्मत हो वो लगा लेते हैं और उस समय तक पहुंचते-पहुंचते हिम्मत भी आ जाती है। जिसने सारा संसार खो दिया, वो इस एक परमात्मा की प्रतिमा को भी कब तक संभाले छाती से फिरेगा। जो सब कुछ छोड़ चुका, जिसने सारे बंधन छोड़ दिए, जिसने सारा बोझ हटा दिया, वो इस प्रतिमा को भी कब तक ढोएगा। एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, कितनी देर तक। एक दिन वो खुद ही कहेगा कि अब ये भी बोझ हो गई, इसको भी अब विसर्जित करता हूं।

इसलिए हमने हिन्दुस्तान में एक व्यवस्था की है कि हम परमात्मा की मूर्ति बनाते हैं, गणेशोत्सव आता है—गणेश की मूर्ति बनाते हैं। काफी शोरगुल मचाते हैं, भक्ति भाव प्रगट करते हैं और फिर जाकर समुद्र में विसर्जित कर आते हैं।

ये प्रतीक है असल में। कि जैसे अभी मिट्टी की मूर्ति के साथ खेल रहे हो, बना रहे हो, नाच रहे हो, गा रहे हो और फिर हिम्मत से विसर्जित कर आते हो, ऐसे ही अंत में एक दिन परमात्मा की सब प्रतिमायें विसर्जित करने की हिम्मत रखना, इस हिम्मत का प्रशिक्षण होता रहे। इसलिए हिन्दुस्तान अकेला मुल्क है जहां हम भगवान को बनाते-मिटाते, दोनों काम करते हैं। दुनिया में कोई कौम भगवान को बनाने-

मिटाने के दोनों काम नहीं करती है। बनाने का काम करते हैं कुछ लोग, मिटाने का नहीं करते। कुछ लोग इस डर से मिटाना पड़े, बनाने का काम ही नहीं करते। जैसे इस्लाम है, वो प्रतिमायें नहीं बनाता, कि कहीं प्रतिमा में फंस न जायें। ईसाइयत ने प्रतिमायें बना ली हैं लेकिन उनको विसर्जित करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। इस मुल्क में हमने एक अनूठा प्रयोग किया—हम भगवान के साथ भी खेलते हैं, बना लेते हैं और जब बना लेते हैं तो पूरी भक्ति-भाव प्रगट करते हैं। ऐसा नहीं कि अपने ही बनाए हुए हैं तो क्या भक्ति-भाव प्रगट करना। खुद ही रंगा-बनाया है इनको, अब क्या इनके चरणों में गिरना—उसकी हम फिकर छोड़ देते हैं। जैसे ही हमने प्रतिष्ठा की कि ये भगवान हैं हम चरणों में गिर जाते हैं और समारोह पूरा हुआ कि उन्हें हम समुद्र में विसर्जित कर आते हैं।

ये बनाना और मिटाना, चढ़ना और उतरना, खोजना और खोज छोड़ देना, ज्ञान इकट्ठा करना और ज्ञान का त्याग कर देना, दोनों की सम्मिलित जो व्यवस्था है—ये ध्यान में रहे तो आप कभी भटकेंगे नहीं। अन्यथा भटकाव हो सकता है। ये अनुभव द्वैत का है, परम ज्ञान के एक क्षण पहले का लेकिन परम ज्ञान नहीं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि कीर्तन में धुन लगाएं, सम्मिलित हों, तो क्या शरीर के बिना कीर्तन में सम्मिलित नहीं हुआ जा सकता है? क्या मन ही मन में कीर्तन नहीं किया जा सकता?

बराबर किया जा सकता है। लेकिन और किन-किन बातों में आप ये शर्त रखते हैं। जब किसी को प्रेम करते हैं तो मन ही मन करते हैं या शरीर को भी बीच में लाते हैं। तब नहीं कहते कि प्रेम मन ही मन नहीं किया जा सकता। शरीर को क्यों बीच में लाना। कितनी चीजों में ख्याल रखते हैं इसका, अगर बाकी सब चीजों में ख्याल रखते हों तो मैं राजी हूं। बिल्कुल शरीर का उपयोग न करें, कीर्तन भीतर ही भीतर हो जाएगा। लेकिन अगर बाकी सब चीजों में शरीर को लाते हैं, तो धोखा मत दें—अपने आपको। डर क्या है शरीर को कीर्तन में लाने में। जब किसी को प्रेम करते हैं तो गले लगा लेते हैं, क्यों शरीर को बीच में लाते हैं, हाथ-हाथ में ले लेते हैं। क्यों हाथ को बीच में ले आते हैं, बस दूर खड़े रहें बुद्ध की मूर्ति बने हुए, मन ही मन में। लेकिन तब आपको लगेगा कि ये समय खो रहा है। मन ही मन में कब तक करते रहेंगे?

आपका मन और आपका शरीर

अभी दो नहीं हैं। अभी आपका मन और आपका शरीर एक है। अभी जल्दी मत करें। अभी आपका मन आपके शरीर का ही दूसरा छोर है। वो शरीर से ही संचालित हो रहा है। शरीर ही अभी उसको गति दे रहा है। इसलिए उचित है कि कीर्तन में अभी शरीर को भी डूबने दें तो ही आपका मन डूब पाएगा और जिस दिन आप मन ही मन में डुबाने में आप सफल हो जायेंगे, मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं रहेगी। आपको खुद ही पता चल जाएगा कि शरीर को बीच में लाने की जरूरत नहीं। मन में ही हो जाए तो आप मन में कर लेना, लेकिन जब तक ये नहीं हो सकता, तब तक शरीर से ही शुरू करें।

आप शरीर में जी रहे हैं, इसलिए आपकी सब यात्रा शरीर से शुरू होगी। और जो ये धोखा देगा अपने को कि शरीर का क्या करना है, वो असल में धोखा दे रहा है। वो धोखा ये दे रहा है कि करना ही नहीं चाहता।

आदमी वहीं से तो चल सकता है, जहां खड़ा है। जहां आप खड़े नहीं हैं, वहां से आप चलेंगे कैसे? आपकी मन की स्थिति क्या है? अभी आपको शराब पिला दें तो शराब आपके शरीर में जाती है, मन में तो जाती नहीं। क्या आप समझते हैं कि आप होश में बने रहेंगे—आप बेहोश हो जायेंगे। क्यों बेहोश हो गए आप? शराब तो शरीर में जाती है, कोई मन में तो जाती नहीं, आत्मा में तो घुस नहीं जाती शराब। मन में, आप होश में रहे आइए—पी लीजिए शराब, क्या हर्ज है—तब आपको पता चलेगा हर्ज का है मामला। अभी कोई आपको एक धक्का मार दे जोर से तो धक्का शरीर तक ही लगता है कि मन तक आ जाता है। मन तक चला जाता है। सच तो ये है कि शरीर को बाद में पता चलता है मन को पहले पता चलता है। तो अभी आपका शरीर और मन दोनों करीब हैं। अभी दूरी नहीं है उसमें।

निरंतर मैं एक घटना कहता रहा हूं। एक मुसलमान फकीर हुआ फरीद। एक आदमी उसके पास आया और फरीद से पूछने लगा कि मैंने सुना है कि मंसूर को काट डाला तब भी मंसूर हंसता रहा। भरोसा नहीं आता इस बात पर। और ये भी मैं सुनता हूं कि जीसस को सूली लगा दी और उन्होंने कहा कि ये जो सूली लगाने वाले लोग हैं, हे परमात्मा इन्हें माफ कर देना। ये बात भी जंचती नहीं, कोई मुझे पत्थर मारे, कोई मुझे सूली लगाए, कोई मेरी गर्दन काटे, ये मैं नहीं कर सकता हूं। मैं समझने आया हूं। तो फरीद ने उसे उठाकर हाथ में एक नारियल

दे दिया। और कहा कि तू इसे फोड़ कर ला। एक ही बात का ख्याल रखना कि गिरी भीतर की साबित रहे, टूट न पाए। वो नारियल कच्चा था। वो आदमी मुश्किल में पड़ गया। उसका ऊपर का खोल तोड़े तो वो भीतर की गिरी टूटती थी, बड़ी कोशिश की लेकिन गिरी टूट गई। लौट के आया और उसने कहा : माफ करें मैं गिरी को बचा न पाया, क्योंकि खोल और गिरी बिल्कुल जुड़ी हैं। नारियल अभी कच्चा है।

फरीद ने दूसरा नारियल दिया उठाकर—वो नारियल सूखा था और कहा इसकी गिरी बचाकर ले आना। उसने बजाकर देखा। उसने कहा कि इसमें कोई अड़चन नहीं है। खोल तोड़ देंगे, गिरी बच जायगी। क्योंकि गिरी और नारियल के बीच फासला पैदा हो गया। तो फरीद ने कहा : नारियल फोड़ने की कोई जरूरत नहीं। जीसस नारियल थे सूखे हुए, और तू नारियल है गीला। अभी तेरी गिरी और खोल जुड़े हुए हैं, अभी तू इतनी फिकर मत कर। जो खोल पर होगा, वो गिरी तक जाएगा। अभी शरीर और मन इकट्ठा है आपका। जिन मित्र ने पूछा है अगर उनके पूछने का कारण यह होता कि उनका शरीर और मन अलग-अलग हो गया है, तो वे पूछते ही नहीं। क्या पूछना है...? आपको पता ही होता कि मेरी गिरी अलग है, खोल अलग है। भीतर मैं अपना मजा ले रहा हूं, शरीर को कोई पता ही नहीं चलता। पूछने का कारण दूसरा है शायद बहुत ही कच्चे नारियल हैं, बहुत ज्यादा जुड़े हैं शायद अभी भीतर गिरी भी नहीं है, पानी ही पानी है।

क्यों—ये डर क्यों हो रहा है कि शरीर भाग न ले। डर हो रहा है कि पास-पड़ौस में कोई देख न ले। अरे आप कंप रहे हैं, ताली बजा रहे हैं, आनँदित हो रहे हैं! आपको कोई रोते देखे तो कोई एतराज नहीं, आपको कोई उदास देखे तो कोई बात नहीं, आप बिल्कुल रोती शकल बनाए जिंदगी भर घूमते रहें तो कोई बात नहीं। आप जरा मस्त हुए तो आपके आस-पास के लोग परेशान हैं, और वे आपको कहेंगे कि होश खो रहे हैं, जैसे दुखी होना समझदारी है, खुशी होना नासमझी है। ठीक है, दुखी लोगों के समाज में जो आदमी मस्त होगा, वो आदमी समाज के बाहर जा रहा है। तो ईर्ष्या जब पैदा होती है तो दूसरे लोग उसकी निंदा करने लगते हैं, कहेंगे कि पागल है। क्योंकि कोई अपने को पागल नहीं मानना चाहता, और ये भीड़ उदास लोगों की इसकी सँख्या ज्यादा है। और कोई भी जब आनँदित होता है तो भीड़ कहेगी कि तुम्हारा दिमाग पागल है। एक आदमी ने मुझे आकर कहा कि

जबसे मैं ध्यान करने लगा हूं, मस्त रहने लगा हूं, मेरी पत्नी परेशान है वो आपके पास आना चाहती है। वो कहती है मुझे क्या हो गया है इतनी मस्ती तो कभी देखी ही नहीं, दिमाग में कुछ खराबी तो नहीं हो गई। मस्ती खराबी का लक्षण है। पहले क्रोध भी करते थे, अब तो इनसे कुछ कहो तो हँसते हैं। तो डर लगता है कि दिमाग में कोई नट बोल्ट ढीला तो नहीं हो गया है क्योंकि स्वभावत: जब कोई गाली दे तो लड़ने को तैयार होना था, ये हंसते हैं। हम सब को ऐसा लगेगा क्योंकि भीड़ पागलों की है। उसमें अगर कोई आदमी होश से भर जाय, आनंद से भर जाय, तो शीघ्र ही हम उसको दिक्कत में डाल देंगे। वो जो मित्र को डर लग रहा है, वो पड़ौसियों का डर है। वो डर है कि कोई क्या कहेगा तो मन ही मन में करो। अगर मन में ही करना है, तो और सब चीजें भी मन में करना तब कीर्तन भी करना। अगर और सब शरीर से कर रहे हो, तो कीर्तन भी आपको शरीर से ही करना होगा। आप जहां हो—वहीं से यात्रा हो सकती है।

दो छोटे-छोटे प्रश्न और हैं, फिर मैं सूत्र लेता हूं। एक बहिन ने पूछा है कि आपने कल कहा कि पूर्ण पुरुष सुन्दर स्त्री की प्रतीक्षा करता है तो क्या सुन्दर स्त्री पूर्ण पुरुष की प्रतीक्षा नहीं कर सकती? इसका भी मन तो होता है बहिन ने लिखा है कि वो पूर्ण पुरुष को पाए और ये भी पूछा है कि कुरूप व्यक्ति भी क्यों सुन्दर स्त्री को पाना चाहता है?

उसका कारण है कि अपने को कोई कुरूप नहीं मानता। और कोई कारण नहीं है, अपने को कोई कुरूप नहीं मानता। अपने को तो लोग सुन्दर ही मानते हैं। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को सुन्दर मानता है और अगर ये शरीर तक ही प्रश्न होता तो मैं इसका उत्तर नहीं देता ये हमारे आध्यात्म की भी स्थिति है। हम अपने को तो ठीक मानते ही हैं और अपने को ही ठीक मानकर सारे जगत को तौलते हैं। यही भूल है। अगर कोई व्यक्ति अपने को पहली दफे सोचेगा तो अपने से ज्यादा कुरूप किसी को भी न पाएगा। बुरा किसी को न पाएगा, अपने से ज्यादा बेईमान किसी को न पाएगा। और जब अपने को ठीक से देख लेगा तो जो मिल जाए इस जगत में उसे लगेगा कि अनुकंपा है प्रभु की कि मैं तो इसके बिल्कुल योग्य नहीं था और ऐसा व्यक्ति जो अपने में सारी बुराइयां देख लेगा, वह सक्षम हो जाता है, इन बुराइयों के पार होने में। बुराई के पार होने का पहला सूत्र है, इसकी पहचान है। जो ठीक से देख लेता है बुरा हूं वो अच्छा

होना शुरू हो जाता है। और जो ठीक से देख लेता है मैं कुरूप हूं, उसके जीवन में एक सौंदर्य का अवतरण हो जाता है, जो कि बहुत अनूठा है।

असल में सबसे ज्यादा कुरूप वे ही होते हैं जो खुद को सुन्दर मानते हैं। उनमें एक तरह की कुरूपता—प्रगट कुरूपता होती है, जो उनके चेहरे पर छाई होती है, चाहे वह कितना भी रंग-रोगन करें। लिपाई-पुताई कितनी भी तरह की करें उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर उन्हें ये ख्याल है कि मैं सुन्दर हूं तो जो अहँकार है वह सब तरफ से व्यक्तित्व को कुरूप कर जाता है। उनकी सौन्दर्य की स्थिति सतह से ज्यादा नहीं होगी। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर हो जाता है अगर उसे भीतर से पता चल जाए कि मैं कुरूप हूं। और जैसा हूं उसमें जरा भी झूठ करने की इच्छा न रह जाये, प्रमाणिक हो जाए उसका भाव। तो उसके भीतर से एक नये सौंदर्य का जन्म शुरु हो जाता है। और जितना भीतर का सौंदर्य बढ़ता है उतना ही शरीर सौंदर्य से आविष्ठ होता चला जाता है। संतों के चेहरे पर जो सौंदर्य है वह शरीर का नहीं है, भीतर से आने वाली किरणों का है।

इस जगत में दो तरह के सौंदर्य हैं। एक सौंदर्य है अंतस् का, अंतरात्मा का। आकृति का सौन्दर्य तो बिल्कुल काल्पनिक बात है। काल्पनिक कहता हूं इसलिए कि आज जो सुन्दर है कल फैशन बदल जाए तो कुरूप हो जाता है। ऐसा समझें कि जमीन पर एक ही आदमी हो तो वो सुन्दर होगा कि कुरूप होगा। वो न सुन्दर होगा न कुरूप होगा। क्योंकि सुन्दर और कुरूप की मान्यता तय करने वाले दूसरे लोग हैं—वो तय करते हैं। चीन में गाल की हड्डी कुरूप नहीं समझी जाती, क्योंकि मंगौल जाति की गाल की हड्डी बड़ी होती है। हिंदुस्तान में गाल की हड्डी कुरूप है। चीन में चपटी नाक सुन्दर समझी जाती है, आर्य मुल्कों में हिन्दुस्तान में, इंग्लैण्ड में, यूरोप-जर्मनी में चपटी नाक कुरूप है। नीग्रो बड़े होंठ पसंद करते हैं—नीग्रो स्त्रियां पत्थर लटका कर होंठ बड़ा करती हैं क्योंकि बड़े होंठ सुन्दर हैं। आर्य मुल्कों में पतले होंठ सुन्दर माने जाते हैं और बड़ा होंठ हो लटका हुआ तो शादी होना मुश्किल हो जाता है। क्या मतलब हुआ—कौन है सुन्दर! अगर हम ३ हजार साल के ज्ञात इतिहास को देखें तो सब तरह के लोग सुन्दर समझे गए हैं, सब तरह के लोग। अलग-अलग तरह से लोगों ने सुन्दर समझा है, मान्यता की बात है, प्रचलन की बात है, फैशन की बात है।

सौन्दर्य बाहर का तो दूसरों की नजर की बात है। भीतर का सौन्दर्य ही असली बात है।

लोगों की मान्यता का जो सौन्दर्य है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मगर हम लोगों की मान्यता से ही जीते हैं—'पब्लिक ओपिनियन' लोग क्या समझेंगे। जो लोगों की मान्यता से जीता है, वो साँसारिक आदमी है और साँसारिक ही रहेगा। लोगों की मान्यता से मुक्त हो जायें, अपनी तरफ अपनी नजर से देखें। अपने को ही खोजें कि मैं क्या हूं? सोचें कि आप अकेले हैं जमीन पर क्या हैं? सुन्दर हैं—कुरूप हैं, अच्छे हैं—बुरे हैं, झूठे हैं—सच्चे हैं। सोचें। और इस तरह जियें कि आपको अपनी कोई बुराई कोई कुरूपता ढांकनी न पड़े; बल्कि आपके भीतर का सौन्दर्य आविर्भूत हो और आपकी सारी बुराई को, कुरूपता को बहा ले जाय। सभी सुन्दर को पाना चाहते हैं, जिन बहिन ने पूछा है—ठीक पूछा है। कुरूप स्त्री भी सुन्दर पुरुष को पाना चाहती है, लेकिन उसे पता होना चाहिए कि जिस सुन्दर को वो पाना चाहती है, उस सुन्दर को वो भी पाना चाहता है। इसलिए मेल कहां होगा?

एक मित्र ने दो दिन–तीन दिन से निरंतर पूछा है जवाब मैंने नहीं दिया, क्योंकि मैंने सोचा कि इससे गीता का कोई संबंध नहीं है। पूछा है कि एक स्त्री के प्रेम में है वो, समझा-समझा के परेशान हो गए, वर्षों हो गए, अब तक ये नहीं समझा पाए उस स्त्री को कि प्रेम क्या है? और वो स्त्री इनके प्रेम में नहीं है, तो कैसे उसको समझायें। बड़ा मुश्किल है, बड़ा कठिन है। क्योंकि आप जिसको चाहते हैं उसकी भी अपनी मापदंड है, उसकी भी अपनी चाहतें हैं, अपनी वासनायें हैं। और ये बड़े मजे की बात है कि जब भी दो व्यक्तियों में एक, दूसरे को चाहता है तो दूसरा उतना ही नहीं चाह सकता। फ्रायड का कहना है कि दो व्यक्तियों में जब भी प्रेम होता है, सौ में से निन्यानबे मौकों पर एक तरफा होता है। 'वन वे ट्रेफिक' होता है। एक स्त्री एक पुरुष को चाहती है, क्योंकि वो पुरुष उसे सुन्दर मालूम पड़ता है, उस पुरुष की अपनी धारणायें हैं सौन्दर्य की, वो किसी और स्त्री को चाहता है। वो उसे सुन्दर मालूम पड़ती है, वो किसी और पुरुष को चाहती है; उसे कोई और सुन्दर मालूम पड़ता है।

दो व्यक्तियों की धारणाओं का मेल बहुत मुश्किल है। क्योंकि दो व्यक्ति इतने अलग-अलग हैं कि धारणाओं का मेल होता नहीं। इसलिए जब भी प्रेमी मिल जाते हैं तो भी

तकलीफ पाते हैं। नहीं मिलते तो सोचते हैं कि पता नहीं स्वर्ग मिल जाता, और मिल जाते हैं तो लगता है कि ये तो नर्क अपने हाथ से बुला लिया। दो व्यक्ति मिल नहीं पाते। इसलिए जिस व्यक्ति को सच में ही प्रेम को आविर्भाव करना है, उसे समझ लेना चाहिए कि दूसरा करेगा या नहीं करेगा, इसकी फिकर छोड़ दें। प्रेम से भर जाय और जितना प्रेम कर सके करे, प्रेम को मांगे न।

इस जगत में प्रेम का उसी को आनन्द मिलता है जो करता है और मांगता नहीं। जो मांगता है, वो कर नहीं पाता। और आनन्द तो उसे मिलता ही नहीं।

अब हम सूत्र को लें। इस प्रकार अर्जुन के वचनों को सुनकर कृष्ण बोले—हे अर्जुन ! मेरा यह चतुर्भुज रूप देखने को अति दुर्लभ है, कि जिसको तुमने देखा। देवता भी इस रूप को देखने तरसते हैं। चतुर्भुज रूप कृष्ण का सहज रूप नहीं है। वो कोई चार हाथ वाले नहीं हैं। दोनों हाथ वाले हैं। जैसे सभी आदमी हैं। लेकिन अर्जुन ने चाहा था कि कृष्ण चतुर्भुज रूप में प्रगट हों। चार हाथ वाले प्रगट हों। ये चार हाथ एक प्रतीक है। हजार हाथ रूप वाले परमात्मा की भी हमने कल्पना की है, वो एक प्रतीक है। माँ बच्चे को उठाती है दोनों हाथों से, ये दो हाथों से उठाने तक तो मनुष्य का प्रेम है। लेकिन जहां परमात्मा चार हाथ से किसी को उठाता है, वहां मनुष्य के ऊपर से प्रेम की खबर लाने के लिए दो हाथ हमने और जोड़े हैं। जैसे परमात्मा दोहरी माता है हमारी, दोहरे अर्थों में। वो इस जगत में तो हमको संभाले ही हुए है, उस जगत में भी संभालेगा। ऐसे हमने चार हाथ की कल्पना की है। ये प्रतीक है—काव्यगत प्रतीक है कि परमात्मा हमें इस जगत् में भी संभाले हुए है, उस जगत में भी संभाले हुए है। उसके चार हाथ हैं, वो चारों दिशाओं से हमें संभाले हुए है। सब ओर से हमें संभाले हुए है, उसके हाथ में हम सुरक्षित हैं। हम छोड़ सकते हैं अपने को, वहां कोई असुरक्षा नहीं है।

कृष्ण के तो दो ही हाथ हैं—लेकिन अर्जुन ने जब विराट रूप देखा तो उसने प्रार्थना की कि अब मैं इतना घबड़ा गया हूं कि तुम चार हाथ वाले की तरह प्रगट हो जाओ। अर्जुन कह रहा है कि वह इतना असुरक्षित हो गया है कि मालूम पड़ रहा है कि मरा। ये जो अनुभव हो रहा है वह अत्यन्त डरावना है, इससे वह अपने को उबार न सकेगा—कभी, अब ये भय पीछा करेगा। अब मैं सो न सकूंगा, उठ न सकूंगा, ये मौत जो

मैंने देखी है—अतिशय हो गई। अब पुराने तुम्हारे दो हाथ काम न करेंगे, अब तुम जैसे थे वैसे ही से काम न चलेगा, अब तुम और भी प्यारे होकर प्रगट हो जाओ।

इसका मतलब यह है कि तुम अनन्त प्रेम होकर प्रगट हो जाओ, तुमने जो मौत मुझे दिखा दी उसको संतुलित करने के लिए चारों हाथ फैलाकर मुझे झेल लो, ताकि मैं सुरक्षित हो जाऊं। ये प्रतीक है चार हाथ का। मतलब यह है कि तुम मां का हृदय बन जाओ मेरे लिए। और ऐसी मां का जो इस जगत में भी और उस जगत में भी संभाले। जिसकी गोद में मैं सिर रख लूं, और भूल जाऊं, जिसको मैंने देखा है। जो मैंने देखा है, उसको मैं भूल जाऊं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु से जितना भय आदमी के मन में है, उसी भय के कारण आदमी मोक्ष को खोजता है। और मनोवैज्ञानिक और अनूठी बात कहते हैं, वो शायद समझ में एकदम से न भी आए; वो कहते हैं मोक्ष की जो धारणा है, आदमी की वह वही है, जो बच्चे को गर्भ की स्थिति में होती है। जब बच्चा गर्भ में होता है तो पूर्ण सुरक्षित होता है, कोई असुरक्षा नहीं होती गर्भ में। कोई भय नहीं होता, कोई चिन्ता नहीं, कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई नौकरी नहीं, कोई मकान नहीं बनाना, भोजन इकट्ठा नहीं करना, कल की कोई फिकर नहीं। सब स्व-चालित (आटोमेटिक), बच्चा गर्भ में पूर्ण विश्रान्ति में है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं। सब उसको मिल रहा है, बिना मांगे मिल रहा है। जरूरत के माफिक मिल रहा है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता, वो तैरता रहता है जैसे कि विष्णु क्षीर सागर में तैर रहे हैं, ऐसा बच्चा मां के गर्भ में द्रवीय पदार्थों में क्षीर सागर में तैरता है। कोई चिन्ता नहीं, कोई उपद्रव नहीं, संसार का कोई पता नहीं। कोई दूसरा नहीं, कोई स्पर्धा नहीं, कोई मृत्यु का पता नहीं। निश्चिन्त परम शांति में बच्चा रहता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की जो धारणा है वो मनुष्य के मन में गहरा जो गर्भ का अनुभव है उसी का विस्तार है। वो थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। क्योंकि हमें ख्याल ही कैसे मिलता है आनन्द का। दुख हम जानते हैं—सुख हम थोड़ा बहुत जानते हैं। लेकिन हम सबके मन में ये भी लगा रहता है कि आनन्द मिले। आनंद का हमें अनुभव कहां है, हम सब चाहते हैं—शांति मिले, शांति को हम जानते तो हैं नहीं।

इसलिए, बिना जाने किसी चीज की वासना कैसे जगती है। जब तक

दुनिया में कार नहीं थी, तब तक किसी आदमी के मन में वासना नहीं उठती थी कि कार हो। बैलगाड़ी हो—अच्छे बछड़े वाली हो, रथ हो वो होता था, लेकिन कार हो, ऐसी किसी आदमी के मन में वासना नहीं जगती थी। लेकिन अब जगती है। क्योंकि अब कार दिखाई पड़ती है। चारों तरफ मौजूद है। शांति को आदमी जानता ही नहीं, अशांति को ही जानता है तो ये शांति की आकांक्षा कहां से जगती है ! मनुष्य विद् कहते हैं, कि वो जो गर्भ का नौ महीने का अनुभव है, वो गहरे अचेतन में बैठ गया है। वहां हमको पता है कि नौ महीने हम किसी गहरी शांति में रह चुके हैं। नौ महीने जिन्दगी निश्चिन्त थी, सुरक्षित थी। मृत्यु का कोई भय न था। हम अकेले थे। और सब तरफ से मालिक थे। कल्पवृक्ष के नीचे थे।

हमने कल्पना की स्वर्ग में कल्पवृक्ष होंगे जहां आदमी बैठेगा, इच्छा करेगा, करते ही इच्छा पूरी हो जाएगी। आपको अगर कल्पवृक्ष मिल जाए तो बहुत संभल के बैठना। क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई पता नहीं।

मैंने सुना है एक आदमी, वो यहां मौजूद होगा आदमी—एक दफा कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। उसको पता ही नहीं था कि ये कल्पवृक्ष है, उसके नीचे बैठकर उसे इच्छा हुई कि बहुत भूख लगी है, अगर कहीं भोजन मिल जाता। वो एकदम चौंका—एकदम थालियां चारों तरफ आ गईं। वो थोड़ा डरा भी कि ये एकदम क्या मामला है, कोई भूत-प्रेत तो नहीं है। कहीं यहां कोई भूत-प्रेत न हो—थालियां तिरोहित हो गईं, भूत-प्रेत चारों तरफ खड़े हो गए। वो घबड़ाया कि ये तो बड़ा उपद्रव है, कोई गर्दन न दबा दे। भूत-प्रेतों ने उसकी गर्दन दबा दी। आपको अगर कोई कल्पवृक्ष मिल जाए तो भागना क्योंकि आपको अपनी इच्छाओं का कोई पता नहीं कि आप क्या मांग बैठेंगे ? क्या आपके भीतर से निकल आएगा पता नहीं, आप झंझट में पड़ जायेंगे, वहां पूरा हो जाएगा, सब कुछ।

मनुष्य विद कहते हैं कि कल्पवृक्ष की कल्पना गर्भ की ही अनुभूति है और स्मृति का विस्तार है। गर्भ में बच्चा जो भी चाहता है, चाहने से पहले, कल्पवृक्ष के नीचे तो पहले चाहना पड़ता है, फिर मिलता है। गर्भ में बच्चा चाहता है उसके पहिले मां के शरीर से उसे मिल जाता है। बच्चे को कभी वासना की पीड़ा नहीं होती। जो मांगता है, मांगने के पहिले मिल जाता है। वो तृप्त होता

है, पूर्ण तृप्त होता है। ये जो कृष्ण का विराट, विकराल भयंकर रूप देखकर अर्जुन घबड़ा गया है, वो कह रहा है तुम चारों हाथ वाले गर्भ बन जाओ, मैं तुममें डूब जाऊं। तुम्हारे प्रेम में, तुम्हारी सुरक्षा में। जो मैंने देखा है, उसको संतुलित कर दो, दूसरे पलड़े पर इतना ही प्रेम, इतनी ही सुरक्षा बरसा दो।

कृष्ण कहते हैं तेरे लिए जो अति दुर्लभ है और देवता भी जिसको देखने के लिए तरसते हैं, वो मैं तेरे लिए प्रगट करता हूं। हे अर्जुन! न मैं वेदों से, न तप से, न दान से, न यश से, इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं देखा जाने को शक्य हूं जैसा अभी मुझे देखता है। परन्तु हे श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए और तत्त्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूं।

जो छीन-झपट करता है तप से, जो सौदा करता है, कि मैं ये देने को तैयार हूं मुझे ये अनुभव मिल जाए, उसको तो ये अनुभव नहीं मिलता। क्योंकि ये अनुभव प्रेम का है, सत्य को रूखा-सूखा साधक पा लेता है, लेकिन चार भुजाओं वाला प्रेम-पूर्ण भक्त ही पा पाता है। साधक भी सत्य को पा लेता है लेकिन उसका जो अनुभव होता है सत्य का होता है, गणित का (मैथमेटिकल) होता है। भक्त का जो सत्य का अनुभव होता है वो होता है काव्य का, प्रेम का। गणित का नहीं। भक्त पहुंचता है रस से डूबा हुआ, और जैसे आप हैं, वैसा ही आपको सत्य का अनुभव होता है। अगर आप रस से भरे गए हैं, प्रेम से भरे गए हैं, तो सत्य जिस रूप में प्रगट होता है, वो प्रेम होगा।

अगर आप गणित, तर्क, विचार, साधना, तप—हिसाब से भरे गए हैं (केलकुलेटेड) तो जो सत्य प्रगट होता है, उसका रूप गणित होता है। अरस्तू ने कहा है—परमात्मा बड़ा गणितज्ञ है। किसी और ने नहीं कहा, क्योंकि अरस्तू बड़ा गणितज्ञ था। और अरस्तू सोच ही नहीं सकता था, परमात्मा की और कोई छवि होगी, गणित से भिन्न होगा। क्योंकि गणित अरस्तू के लिए परम सत्य है। और गणित से ज्यादा सत्यतर कुछ भी नहीं है। इसलिए अरस्तू को लगता है, परमात्मा भी एक बड़ा गणितज्ञ है और सारा जगत गणित का एक-खेल है।

मीरा से कोई पूछे तो मीरा कहेगी कि परमात्मा एक नर्तक है। सारा जगत नृत्य का एक विस्तार है। अगर बुद्ध से कोई पूछे तो बुद्ध कहेंगे

—परम शून्य, शांति, मौन, विराट-मौन जहां कुछ भी नहीं है। न लहर उठती है न मिटती है। सदा से ऐसा ही। ये प्रत्येक व्यक्ति जिस तरह से पहुंचता है, जो उसके पहुंचने की व्यवस्था होती है, जो उसका अपने व्यक्तित्व का ढांचा होता है, उसके अनुकूल परमात्मा उसे प्रतीत होता है और वो जब उसे भाषा देता है, तब और भी अनुकूल हो जाता है। कृष्ण कह रहे हैं कि तप से तो ये रूप मिलने वाला नहीं, क्योंकि तपस्वी इस रूप की मांग भी नहीं करता। महावीर कभी सोच भी नहीं सकते कि सत्य चार भुजाओं वाला प्रगट हो। असंभव है। अकल्पनीय है। महावीर कहेंगे कि क्या मतलब है चार भुजाओं वाले से। ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं। महावीर के लिए सत्य कभी चार भुजाओं वाला सोचा भी नहीं जा सकता। अर्जुन कह रहा है कि 'चार भुजाओं वाला सत्य। प्रेमपूर्ण सत्य, मां के हृदय जैसा, गर्भ जैसा सत्य। जहां मैं सुरक्षित हो जाऊं, मैं भयभीत हो गया हूं।' एक छोटे बच्चे की पुकार, जो इस जगत् में अपनी मां को खोज रहा है। इस पूरे अस्तित्व को जो मां की तरह देखना चाहता है तो कृष्ण कहते हैं, लेकिन अनन्य भक्ति से जिसने पुकारा हो, उसके लिए मैं प्रत्यक्ष हो जाता हूं इस रूप में। न केवल प्रत्यक्ष हो जाता हूं बल्कि वो मुझमें प्रवेश भी कर सकता है। और मेरे साथ एक भी हो सकता है। हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे लिए ही, सब कुछ मेरा समझता हुआ, सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को करने वाला और मेरा परायण है—अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर है, तथा मेरा भक्त है और आसक्ति रहित है, स्त्री, पुत्र, धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेह रहित है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैर-भाव से शून्य है, ऐसा वो अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है।

अन्त में दो-तीन बातें समझ लेने जैसी हैं और बहुत उपयोग की हैं। जो साधक हैं, उनके लिए बहुत काम की हैं। पहिली बात, कृष्ण कहते हैं—जो सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दे, प्रेम छोड़ता है, घृणा छोड़ने से डरती है। क्योंकि घृणा में अपने को सुरक्षित खुद ही करना होता है। प्रेम छोड़ता है, प्रेम का मतलब ही है कि हम दूसरे पर सब कुछ छोड़ दें।

मैंने सुना है एक युवक विवाह करके लौट रहा था। पानी के जहाज से यात्रा कर रहा था, जोर का तूफान आया। उसकी प्रेयसी कंपने लगी और घबड़ाने लगी, लेकिन वो युवक

शांत था। उसकी प्रेयसी ने कहा कि तुम इतने शांत क्यों हो, मौत दिखाई पड़ती है—नाव डूबेगी लगता है, मल्लाह भी घबड़ा गए हैं। उस युवक ने कहा घबराओ मत, ऊपर जो है—मैंने सब उस पर छोड़ दिया है। उस स्त्री ने कहा चाहे कुछ भी छोड़ा हो या न छोड़ा हो, यहां मौत खड़ी है। उस युवक ने म्यान से तलवार खींच ली—नंगी चमकती हुई तलवार थी, उसने अपनी प्रेयसी के कंधे पर तलवार रख दी।

पत्नी हंसने लगी कि तुम क्या खेल कर रहे हो। उस युवक ने पूछा कि नंगी चमकती हुई तलवार, जरा सा धक्का और तेरा सिर अलग हो जाय। तुझे मेरे हाथ में तलवार देख कर भय नहीं लगता ? उसकी पत्नी ने कहा—तुम्हारे हाथ में तलवार देखकर भय कैसा ! तुमसे मेरा प्रेम है। उस युवक ने तलवार भीतर रख ली और कहा—'उससे मेरा प्रेम है, उसके हाथ में तूफान देखकर मुझे कोई भय नहीं लगता।' उसकी मर्जी। अगर डुबाने में ही हमें कुछ लाभ होता होगा, तो डुबाएगा और बचने में कोई हानि होती होगी तो वह हमें नहीं बचाएगा। उस पर छोड़ा हुआ है। प्रेम छोड़ता है पूरा, तो कृष्ण कहते हैं जिसने मेरे ऊपर छोड़ा है पूरा और जो प्रत्येक कार्य को ऐसे करता है जैसे वो मेरा—कृष्ण का काम है, उसका नहीं है। जिसका अहं भाव पूरा समर्पित है। ये बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा सूत्र और जो आसक्ति रहित है। पत्नी में, बच्चे में, धन में जिसकी कोई आसक्ति नहीं, जिसने अपना सारा प्रेम मेरी तरफ मोड़ दिया है।

इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक खतरनाक मतलब है जो आम तौर से लोग ले लेते हैं। उसका मतलब यह है कि पत्नी को प्रेम मत करो, बच्चे को प्रेम मत करो। सब तरफ से प्रेम को सिकोड़ लो और परमात्मा के चरणों में डाल दो। ये आम तौर से लिया गया निर्णय है, जो खतरनाक है। क्योंकि इसका परिणाम, इसका परिणाम एक ऐसा आदमी होता है, जो सब तरफ से टूट जाता है। रसहीन हो जाता है। और ये पत्नी और बच्चे और मित्रों से जो खींचता है, इस छीना-झपटी में ही प्रेम मर जाता है।

वो करीब-करीब ऐसा है जैसे कोई लगे लगाए पौधे को उखाड़कर कहीं और लगाने चले। और पत्नी और परमात्मा में—उखाड़कर प्रेम को पत्नी की तरफ से परमात्मा में लगाने में ही प्रेम की जड़ें टूट जाती हैं। वो परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। पत्नी से तो उखड़ जाता

है, परमात्मा तक कभी पहुंच नहीं पाता। लेकिन ये आम भाव है, जो लोगों ने लिया है।

मेरी ऐसी दृष्टि नहीं है। मेरा मानना ये है कि पत्नी की तरफ भी तुम्हारा जो प्रेम है वह भी कृष्ण का ही प्रेम है, तुम्हारा प्रेम नहीं। तुम अपने को हटा लो, प्रेम को मत हटाओ। क्योंकि जब कर्मों में तुम कहते हो कि सब कर्म उसके हैं, तो प्रेम भी उसका है। पत्नी के प्रति भी तुम्हारा जो प्रेम है वो भी उसका है। तुम्हारा नहीं। और पत्नी में तुम्हें जो भी दिखाई पड़े, पत्नी को देखना बन्द कर देना और कृष्ण को देखना शुरू कर देना। बच्चे से हटाना मत प्रेम को सूख जाएगा, पौधा बहुत कमजोर है। वैसे ही तो प्रेम नहीं है—बच्चे से क्या खाक प्रेम है और पत्नी से क्या प्रेम है। ऐसे ही तो ऊपर ही ऊपर लगाया हुआ—मौसमी पौधा है। उसको उखाड़कर परमात्मा में लगाने गए, उखाड़ की छीना-झपटी में ही टूट जाएगा और जड़ें उसकी इतनी कमजोर हैं कि परमात्मा तक पहुंचती नहीं। बेहतर तो ये है कि पत्नी में ही थोड़ा और जड़ों को गहरे पहुंचा देना, इतने गहरे पहुंचा देना कि पत्नी ऊपर रह जाए और भीतर परमात्मा हो जाए। और बच्चे में प्रेम को इतना उंडेल देना कि बच्चा दिखना बन्द हो जाए और बाल-गोपाल दिखाई पड़ने लगे। तो पत्नी नहीं रही, बच्चा नहीं रहा। सारा प्रेम परमात्मा को समर्पित होगा।

ये दो रास्ते हैं—पहिला रास्ता आम तौर से प्रचलित है। मैं उसके सख्त खिलाफ हूं, मेरी व्याख्या तो यही है कि जहां भी तुम्हारा प्रेम हो, वहां परमात्मा को देखना शुरू करना। प्रेम को भूल जाना और परमात्मा को देखना। धीरे-धीरे वही पौधा जो तुम्हारी पत्नी पर लगा था—धीरे-धीरे जड़ें फैला लेगा और परमात्मा में प्रवेश कर जाएगा।

क्योंकि तुम्हारी पत्नी में काफी परमात्मा है। कोई परमात्मा की वहां कमी नहीं है। और कहीं उखाड़ कर ले जाने की जरूरत नहीं है, वहीं गहरा करने की जरूरत है। प्रेम की गहराई प्रार्थना बन जाती है। और प्रेम अगर पूर्ण गहरा हो जाए तो जहां पहुंच जाता है, वहीं परमात्मा है। कृष्ण कहते हैं सारा प्रेम मुझे दे दे। वो ये नहीं कहते कि उखाड़ ले कहीं से। वो ये कहते हैं सारा प्रेम मुझे दे दे। जहां से भी दे, मुझको ही देना। नदी कहीं से भी गिरे, मेरे सागर में ही गिरे। रास्ता कोई भी हो, किनारे कोई भी हों। किनारों से छूट के तू सागर तक नहीं पहुंच

सकेगा। किनारों में बहना मजे से, लेकिन जानना कि ये किनारे भी सागर में पहुंचा रहे हैं।

जीवन की सारी प्रेम धारा परमात्मा की तरफ बहने लगे, और कहीं आसक्ति न रह जाए, ये मेरा अर्थ है। सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगे। और जिस दिन सारी आसक्ति परमात्मा की तरफ बहने लगेगी, उस दिन स्वभावतः जगत में कोई बैर-भाव न रह जाएगा।

ये मेरी व्याख्या समझें तो ही ख्याल में आएगा। अगर आप पहली गलत व्याख्या समझते हैं तो जगत पूरा बैरी हो जाएगा। जो पति—पत्नी को छोड़कर भागता है, पत्नी बैरी हो जाती है। और जिससे आप प्रेम को तोड़ते हैं तो तटस्थ होना मुश्किल है। प्रेम को अगर तोड़ना है तो घृणा पैदा करनी पड़ती है, तभी तोड़ पाते हैं। जिस पत्नी को मैंने प्रेम किया है, अगर आज उससे मैं, प्रेम को हटाऊं तो मुझे एक ही काम करना पड़ेगा कि मुझे उसके प्रति घृणा पैदा करनी पड़ेगी। इसलिए साधु-संत लोगों से कहते हैं कि क्या है तुम्हारी पत्नी में—मांस, हड्डी, खून यही सब भरा हुआ है। इसको देखो। इसको देखने से वितृष्णा पैदा होती है। इसको देखने से घृणा पैदा होगी। किस पत्नी के पीछे दीवाने हो रहे हो, उसमें है ही क्या? कचरे का ढेर है भीतर, उसको देखो। लेकिन जिस पत्नी में कचरे का ढेर है भीतर और जो साधु-संन्यासी समझा रहे हैं, उनके भीतर क्या है? वो भी कचरे का ढेर है और मजा ये है कि वो भी कचरे के ढेर से पैदा हुए हैं। वो जिस मां से पैदा हुए हैं, उसी कचरे के ढेर से पैदा हुए हैं। उसी का विस्तार है, उसी मवाद, उसी हड्डी-मांस का थोड़ा-सा और फैलाव है। अगर आपको प्रेम हटाना है संसार से जबरदस्ती, तो आपको घृणा पैदा करनी पड़ेगी। बैर-भाव पैदा करिये तो आप प्रेम को हटा पायेंगे।

और कृष्ण का दूसरा सूत्र है कि बैर-भाव किसी से रखना मत। इस संसार में किसी के प्रति बैर-भाव न रह जाए। बड़ी मुश्किल बात है। संसार में बैर-भाव न रहे यह तभी हो सकता है जब संसार में प्रेम भाव इतना गहरा हो जाए कि बैर-भाव न बचे। तो संसार से प्रेम को मत तोड़ना, संसार से प्रेम की धारा को गहन करना, गहन करना और खोदना और खोदना और संसार के प्राणों तक प्रेम को पहुंचा देना। कोई बैर-भाव न रह जाएगा और संसार के करीब ही परमात्मा है।●

संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

अमृत-पत्र

मेरे प्रिय,

प्रेम। "मैं ?" को देख गया हूं।
विचार सुन्दर हैं।
लेकिन, स्मरण रखना कि वे विचार ही हैं।
विचार का अर्थ है : जागते में देखे गये स्वप्न।
लेकिन उनमें सत्य की परछाईं भी है।
विचार छलांग के लिए आधार बनें तो सदा सहयोगी हैं।
छलांग : निर्विचार में।
अन्यथा विचार बाधा भी हो जाते है।
यह सजगता सदा रखना।
विचार से तृप्त नहीं होना है।
विचार और भी अतृप्त करे अनुभव के लिये—यही उसकी सार्थकता है।
मेरी शुभकामनाएं।

१४-४-१९७२

[साधु योग प्रीतम (भीलवाड़ा, राजस्थान) को उनकी टंकित पुस्तक—पाण्डुलिपि "मैं ?" को देखने पर प्रतिक्रिया स्वरूप लिखा गया भगवान श्री रजनीश का पत्र]

दो : भावसुमन

भगवान श्री रजनीश के प्रति :

★

प्रभु !
आना चाहता हूं,
तेरे पास, परन्तु
कैसे आऊं ?
यह अपवित्र शरीर लेकर,
तू तो पावन है,
तेरी रज, लग गई मेरे देह को,
डेढ़ वर्ष पूर्व, आबू में,
तभी से,
तड़प रहा हूं,
धो रहा हूं,
मन को, देह को, क्योंकि
आत्मा का तो अभी पता ही नहीं,
परन्तु,
मैल हैं गहरे, जमे हुए नींव में,
जन्मों जन्मों के
ध्यान में जाता हूं,
साँझ-सबेरे, रात्रि में
लगता है,
तेरे पावन जल से सब धुल रहा है
और
अन्ततः वह घड़ी भी आवेगी, जब
तेरे समक्ष खड़ा होने की योग्यता
प्राप्त कर सकूंगा,
परन्तु, अभी तो,
ध्यान में अपने ही मैल, कुचैल,
काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, आदि
जिनसे मित्रता रही है मेरी—
जन्मजन्मान्तर से
आकर खड़े हो जाते हैं भूत से, प्रेत से
परन्तु,
तेरी कृपा अपार है, अनुकम्पा अपार है
एक झलक,
केवल दिखलाई पड़ती है तेरी
और उसी समय,
यह सब भूत-प्रेत
न जाने,
कहां विदा हो जाते हैं, और मैं,
मैं डूब जाता हूं,
एक प्रकाश के सागर में,
अथाह सागर में, और फिर
भर जाता हूं—आनंद से, प्रेम से
परन्तु प्रभु, तभी
टूट जाते हैं, सपने से
खुलती हैं आंख, तड़फता है मन,
फिर से, उसी स्थिति में जाने को
परन्तु, घड़ी है कि रुकती नहीं,
बजाती रहती है—साढ़े छः, सात
और फिर साढ़े सात
बस फिर मजबूर होकर
उठ ही जाना पड़ता है
जल्दी से,
कपड़े पहिन, नाश्ता कर,
पहुंच जाना पड़ता है, दफ्तर
टेबिल पर,
परन्तु, अब तो यहाँ भी
व्यवहार बदलने लगे हैं,
प्रत्येक बाबू में, प्रत्येक साथी में,

तेरी ध्वनि है,
सुनाई देती है, दिखाई देती है
फिर भी, प्रभु
मन चंचल है
यहां लगता नहीं है
तड़पता हूं, परन्तु शिकवा नहीं है,
शिकायत नहीं है
कर्म हैं मेरे ही, जन्मों-जन्मों के
भोग रहा हूं,
कारावास की सजा है, काट रहा हूं,
परन्तु,
तेरे पावन स्पर्श के कारण,
अब
यह कारावास भी
आनंद बनता जा रहा है,
प्रेम बनता जा रहा है,
तेरी अनुकम्पा अपार है
अपार है, तेरी अनुकम्पा
जो मेरे जैसे पापी को भी, ध्यान का
स्नान दिया, ध्यान दिया, ध्यान से
समाधि की ओर प्रवृत्त किया,
अपार है प्रभु तेरी अनुकम्पा
अपार है, अपार है, अपार है
धन्यवाद में,
केवल भावना के पुष्पों के सिवा
क्या है, मेरे पास
जो तुम्हें अर्पित करूं,
सो,
समर्पित है, समर्पित है, समर्पित हूं !

● *साधू ओमप्रकाश*
कोटा (राजस्थान)

★★

हे प्रभु अब तुमसे काह कहौं ।
ऐसी ध्यास जगायी तुमने
जेहि हित मैं हंसि-हंसि सबै सहौं ।।

कोउ कहत है मूरख भारी,
कोउ कहत इसकी मति मारी
मैं कुछ अब कैसे कासु कहौं—
तुम ही तुम सब लगि
झाँकि परौ ।। हे प्रभु० ।।

कोऊ भोला निर्-अभिमानी
कहत मोहिं—तुम पूरन ज्ञानी
मैं जानत, कछु जानत नाहीं
बस एक तिहारो नाम जपौं
।। हे प्रभु० ।।

● *स्वामी अनेह भारती,*
जबलपुर

भगवान रजनीश के संदेशवाहक संन्यासियों एवं संन्यासिनों का एक स्नेहमंडल बिहार राज्य के अनेक नगरों में प्रेम दान करते हुए गत २२ फरवरी १९७३ ई० की संध्या में भागलपुर पधारा। इस स्नेह मंडल के नेता श्री स्वामी वैराग्य अमृत जी एवं नेत्री मां आनन्द मधु थीं। मां धर्म प्रतिभा सबसे अल्पवय की कीर्तनानंदी साधिका थीं। दश संदेह वाहकों का

हंसता-गाता संन्यास—
बिहार राज्य में

यह स्नेह मंडल अनेक अद्भुत विशेषताओं से मंडित था। दो जन्मतः जर्मन थे तो एक मारीशस के थे। उत्तर, पश्चिम एवं मध्य भारत के कई अन्य सदस्य थे। वास्तव में यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय था। सबके नाम और रूप आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक थे। गाने, बजाने, नाचने, प्रवचन करने तथा लोगों के हृदय जीत कर उन पर सुप्रभाव छोड़ने की कला में वे प्रवीण थे। भक्त दक्ष होते हैं, अव्यावहारिक नहीं—यह इन्हें देखते ही स्पष्ट हो जाता था। वे नगर-कीर्तन कर रहे हों या प्रवचन अथवा शंका समाधान कर रहे हों उनके इर्द गिर्द एक मधुर प्रीतिकर वातावरण फैला रहता था। वे एक आनन्द लेकर आये और सुरभित फूलों की एक विरासत छोड़कर आगे बढ़ गये। प्रसन्नवदन, हंस मुख, विनोद पूर्ण, आनन्दमय, प्रभावपूर्ण वाणी से युक्त इस स्नेह मंडल ने नगर में धूम मचा दिया। स्थानीय रोटरी क्लब में अंग्रेजी में एक सुन्दर और संक्षिप्त भाषण स्वामी आनन्द समीर

ने दिया। स्वामी वैराग्य अमृत की वाणी की गूंज तो भगवान रजनीश की वाणी की ही अनुगूंज सदृश मधुर प्रतीत होती थी। किस स्पष्टता एवं ऊँचाई से वे बोलते थे! भागलपुर विश्वविद्यालय में उनका संक्षिप्त भाषण अत्यन्त उत्तेजक सिद्ध हुआ। श्रोताओं की भीड़ मंत्रमुग्ध होकर उन्हें सुनती थी। मां आनंद मधु का तो कहना ही क्या था! उनका वह मुक्त-भाव, वह सरल हास्य, ज्ञान-ध्यान की दीप्ति, उनके पावन नेत्रों की करुणा और आभा, उनके आनन पर उद्भासित शान्ति और प्रसन्नता, उनकी वाणी में मुखरित बोध और प्रेम, उनकी सुलझी और स्पष्ट बुद्धि एवं निश्छल, कोमल एवं उदार भावनाओं से समृद्ध उनका स्नेह, हृदय को उनके समक्ष झुकाने में समर्थ थे। मैं समझता हूं कि यदि उनके समान मुक्तभाव, स्पष्ट बुद्धि, एवँ मधुर स्नेह पूर्ण हृदय एवं बोध प्रेम की प्रेरणा-प्रद वाणी से समृद्ध सौ मातायें भारत को एक साथ सुशोभित करें तो भारत का वातावरण ही बदल जाय।

भागलपुर का वातावरण उन दिनों अनुपम माधुर्य से भर उठा था। अध्यात्म के प्रति क्या रुचि, क्या आकर्षण उत्पन्न हो गया था। यह स्नेह मंडल ऋतुराज बसंत की तरह भागलपुर आया और प्रेमी जनों के मानस पर छा गया। उनकी इस अहेतु की करुणा का भागलपुर अभारी है, अनुग्रहीत है। मां आनंद मधु तो अपना नाम सर्वथा सार्थक करती हैं। उनके हृदय में प्रेम की गंगा लहराती है। ध्यान प्रयोग में ढेर सारे लोग भाग लेते थे। दर्शकों की संख्या भी कभी कम न रहती थी। प्रत्येक बैठक में उपस्थिति उत्साहवर्धक रहती थी। सबके मन में यह लालसा रह गई कि वे कुछ दिन और ठहरते। नगर के विभिन्न प्रेमीजनों ने अपने-अपने निवास पर उनके भोजनादि का प्रबंध किया था। इससे सारे नगर में फैले विकेन्द्रित प्रीति का परिचलय मिलता था। महिला क्लब एवं महिला कालेज में माँ आनन्द मधु के प्रवचन अद्भुत थे। सुदामा चरित्र की अभिनव व्याख्या के साथ पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर उनके प्रवचन को सुनकर श्रोता चकित, स्तंभित एवं विमुग्ध हो गये। भगवान् रजनीश के विचारों को बड़ी ही खूबी से उन्होंने एवं स्वामी वैराग्य अमृत ने श्रोताओं के समक्ष रक्खा। जो भी उनके सम्पर्क में आता एक गहरी आत्मीयता का अनुभव करता था। लोग आश्चर्य करते थे। कुछ निन्दा आलोचना भी करते थे। परन्तु निन्दा आलोचना क्रांति के किस चरण की नहीं होती? अगर किसी को मुक्त-भाव बेशर्मी

प्रतीत हो तो यह उसकी अपनी ही कुंठा का प्रतिबिम्ब है, न कि मुक्त-भाव का दोष। नर-नारी का समवेत नगर कीर्तन यदि किसी को अखरे तो यह उसकी अपनी ही असंतुष्ट काम-वृत्ति (अनसेटिसफाइड लीबिडो) की प्रतिक्रिया है, और कुछ नहीं। नगर कीर्तन में तो एक समां बंध जाता था। उसमें भाग लेने वाले अपना परिवेश भूल जाते थे। भगवान रजनीश की महाचेतना विश्व में जीवन को जगाये, समझ और स्नेह फैलाये—यही लालसा है।

● *योगानन्ददास*
अध्यापक
'महावीर कुटी'
शिवशंकर सहाय रोड,
भागलपुर–१

★

मिलें

मुल्ला नसरुद्दीन

से—

मनुष्य जब अपराधी होता है तो एक के प्रति नहीं अनेक के प्रति ही होता है।

वस्तुतः तो वह समस्त के प्रति ही अपराधी होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक गुमनाम पत्र मिला जिसमें लिखा था कि आप मुर्गियां चुराना बन्द कर दें, अन्यथा आपकी जान खतरे में है। मुल्ला उस पत्र को पुलिस-थाने ले गया और पूरी जांच-पड़ताल कर पत्र-प्रेषक का नाम मालूम करने की प्रार्थना की।

पुलिस अधिकारी ने उसे समझाते हुए कहा—नसरुद्दीन, इस पत्र में जैसा लिखा है वैसा कर दो, फिर तुम्हें उसके नाम से मतलब ?

नसरुद्दीन ने अत्यन्त उदास हो कर कहा :

"साहब, इस शैतान का नाम तो मालूम होना ही चाहिए, अन्यथा मुझे कैसे मालूम हो कि मैं किस व्यक्ति की मुर्गियां चुराना बन्द करूं ?"

गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी.....!

●

अब यह बहुत मजे की बात है कि मैंने गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी। कभी नहीं पढ़ी है पूरी। कई दफा शुरू की है। दो चार दस पंक्तियां पढ़ीं और मैंने कहा ठीक है, और मैंने वहीं बन्द कर दी। अब जब गीता पर बोल रहा हूं तब पहली दफा ही सुन रहा हूं, इसलिए गीता की व्याख्या करने का कोई उपाय नहीं है मेरे पास। व्याख्या तो वह करे जिसने गीता का अध्ययन किया हो, विचार किया हो, और समझा हो। अब यह बड़े मजे की बात है कि कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त मैं उसे उठाकर रख देता हूं, लेकिन साधारण-सी कोई किताब पढ़ता हूं तो आद्योपान्त पढ़ जाता हूं, क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। एक बिल्कुल साधारण-सी किताब मैं पूरी पढ़ता हूं, शुरू से आखीर तक। उस पर मैं रुक नहीं सकता क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। लेकिन कृष्ण की किताब उठाता हूं तो दो-चार पंक्तियां पढ़कर रख देता हूं कि बात ठीक है। उसमें आगे मेरे लिए कुछ खुलेगा, ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता। कृष्ण की गीता मुझे ऐसी लगती है जैसे मैंने ही लिखी हो। मैं जो बोलता हूं गीता पर वह व्याख्या नहीं है और आपको लगता है कि इतनी गहरी व्याख्या हो गई तो इसलिए नहीं कि मैं कृष्ण से प्रभावित हूं, बल्कि इसलिए कि कृष्ण ने वही कहा है जो मैं कहता हूं। मैं अपनी ही व्याख्या कर रहा हूं, बहाना गीता का होता है। तो कृष्ण पर बोलते-बोलते कब मैं अपने पर बोलने लगता हूं इसका आपको ठीक-ठीक पता उसी क्षण चलेगा जब आपको लगे कि मैं कृष्ण पर बहुत गहरा बोल रहा हूं। तब मैं अपने पर ही बोल रहा हूं।

●

[भगवान श्री की प्रश्नोत्तर-वार्त्ताओं में से जो "मैं कहता आंखन देखी' में हैं, उसका एक अंश।]

न ग्न ता ★

(साधना-शिविरों में साधकों का ध्यान के समय नग्न हो जाना, काफी जन-चर्चित रहा। उसी संदर्भ में भगवान श्री की जीवन-दृष्टि यहां दी जा रही है।)

● कुछ मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। सभी प्रश्न साधना के समय नग्न होने के सम्बन्ध में पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि "शिविर में नग्नता पर रोक क्यों लगाई गयी है, क्या उसका उपयोग नहीं है?"

नग्नता का तो बहुत उपयोग है। सिर्फ नग्नता—नग्नता ही नहीं है। इसलिए तुम्हारे वस्त्रों के साथ तुम्हारी सभ्यता, तुम्हारी संस्कृति, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे संस्कार सभी जुड़े हुए हैं। उन्हें उतार के रखते ही वह सब भी जो तुम्हारे ऊपर चढ़ा है वस्त्रों की भांति, उतार के रख दिया जा सकता है। नग्न होने का भय ही यही है कि मैं जैसा हूं वैसा ही दिखाई न पड़ जाऊं। बाह्य नग्नता तो प्रथम चरण है, वस्तुतः तो नग्न भीतर होना है कि मैं जैसा हूं, वैसा ही प्रगट हो जाऊं, कोई नकाब, कोई चदरा, कोई मुखौटा कोई ऊपर का आवरण, जो झूठा है मेरे ऊपर न रहे। लेकिन मनुष्य क्योंकि बाहर ही जीता है इसलिए बाहर की नग्नता भी भीतर की नग्नता की तरफ सहयोगी होती है। नग्न होने में भय भी लगता है क्योंकि वस्त्रों ने तुम्हें वो रूप दिया है, जो तुम्हारे शरीर पर नहीं है। वस्त्रों ने तुम्हें ढांक रखा है, वस्त्रो ने तुम्हें छिपा रखा है, दूसरे की आंखों से, वस्त्रों के कारण तुम बच जाते हो।

नग्न खड़े होने का अर्थ है, "मैं जैसा हूं, भला-बुरा, सुन्दर-असुन्दर वैसा प्रगट हूं और अपने को छिपाता नहीं।" वह एक प्रतीक है और सुबह के ध्यान में, दूसरे चरण में (ध्यान-शिविर में सुबह के प्रवचन के बाद भगवान श्री सक्रिय ध्यान करवाते हैं जिसमें ध्यान के चार चरण होते हैं: १. तीव्र सांस की भीतर चोट करना, २. चित्त में छिपे विकारों-तनावों का रेचन करना, ३. हू-हू का सतत

उच्चारण करना व ४. विश्राम में प्रवेश करना।) जब कि मैं तुमसे कहता हूं कि जो भी तुम्हारे भीतर हो उसे प्रकट कर लो, तो स्वभावतः वस्त्रों को फेंक देने का ख्याल भी पैदा होता है। और वस्त्रों को जो उतार कर रख देता है, उसे दूसरे चरण में, अपनी विक्षिप्तता को प्रकट करने में ज्यादा आसानी हो जाती है। क्योंकि जो नग्न होने को राजी हो गया, उसे अब दूसरे की चिन्ता नहीं है। अब वो चीख भी सकता है, चिल्ला भी सकता है, नाच भी सकता है। दूसरे की चिन्ता वस्त्रों के साथ ही जैसे उतर गयी। दूसरे क्या कहेंगे, जिसको इस बात का भय है, वह वस्त्र भी नहीं उतार पायेगा। सहयोगी हैं कि वस्त्रों को उतार के रख के ही सुबह के ध्यान में प्रवेश किया जाए लेकिन कुछ साधक इतना साहस नहीं भी कर पाते तो बीच में भी दूसरे चरण में उनको ऐसा ख्याल आ सकता है कि वस्त्र अलग कर दें तब भी वस्त्रों को अलग कर देना उपयोगी है। ये उपयोगिता अगर वस्त्र सिर्फ वस्त्र ही होते तो न होती, वस्त्रों के साथ बहुत कुछ जुड़ा है। जब तुम बच्चे की भांति पैदा हुए थे, तो नग्न थे, जब भी तुम पुनः नग्न खड़े हो जाते हो, तुम अपने बचपन में वापस लौट जाते हो। वस्त्र तुम पर आरोपित किये गये, जिस दिन से तुम्हारे ऊपर वस्त्र आरोपित किये गये, उसी दिन से तुम्हें शरीर का बोध हुआ। उसी दिन से शरीर में कुछ पाप है, शरीर में कुछ छिपाने योग्य है, शरीर में कुछ ढांकने योग्य है, शरीर में कुछ बुरा है, ये सारे भाव पैदा हुए। छोटे बच्चों को उनके मां-बाप, अगर वो नग्न बाहर जाये, तो डाटेंगे, डपटेंगे। तो शरीर के प्रति एक निन्दा का भाव वस्त्रों के साथ ही पैदा हुआ। शरीर में कुछ बुरा है, विशेषकर जननेन्द्रियां बुरी हैं, छिपाने योग्य हैं उसके साथ ही तुम्हारा शरीर भी दो हिस्सों में बंट गया। नीचे का शरीर कुछ बुरा ऊपर का शरीर कुछ अच्छा, ये जो विभाजन है शरीर के भीतर उसने तुम्हारी जीवन चेतना को भी दो खण्डों में बांट दिया। आम तौर से लोग अपने सिर को ही अपना मानते हैं, बाकी शरीर को अपना नहीं मानते हैं। बहुत से बहुत तो ऊपर के हिस्से को अपना मानते हैं बाकी नीचे हिस्से को ऐसा मानते हैं कि मजबूरी है। इससे तुम्हारे भीतर की जीवन ऊर्जा है, खंडित हो गयी। बच्चे के भीतर जीवन ऊर्जा अखंड होती है, उसका वर्तुल होता है। तुम्हारे भीतर वह वर्तुल नहीं है। लेकिन जिस क्षण तुम साहस करते हो और वस्त्रों को उतार कर

रख देते हो, उसी क्षण वस्त्र पहनने के दिन से, वस्त्र जबरदस्ती पहनाये जाने के दिन से अब तक तुम्हारे चित्त पर जो शरीर के सम्बन्ध में निन्दा के भाव थे, वे भी हट जाते हैं। तुम्हें ख्याल ही न होगा कि हम इतने वस्त्रों में रहते हैं कि धीरे-धीरे हमें खुद भी भूल गया है कि वस्त्रों के बिना हमारा शरीर क्या है। वस्त्रों में हम एक कैद की तरह हैं, वस्त्र हटते ही हम मुक्त हो जाते हैं। पशु-पक्षियों की तरह मुक्त हो जाते हैं। उस मुक्तता का उपयोग किया जा सकता है। इसलिए उपयोगिता तो बहुत है।

लेकिन इस शिविर में मजबूरी थी। मजबूरी ऐसी थी कि या तो शिविर हो तो नग्नता की सुविधा न हो सकेगी, नग्नता की सुविधा करनी हो, तो शिविर न हो सकेगा। तो इन दोनों में जो कम बुराई थी, वही चुन लेना उचित समझी गयी। क्योंकि राजस्थान सरकार ने केवल दो दिन पहले खबर भेज दी कि वे अपना कोई मैदान, अपनी कोई संस्था, अपना कोई भवन नहीं दे सकेंगे। दो दिन पहले कोई भी व्यवस्था होना मुश्किल थी और साधक सारी दुनियां से आ चुके थे। भारत के साधक तो आने वाले थे, भारत के बाहर के साधक आ चुके थे। और कोई उपाय नहीं था और सरकार को इतना तो हक है ही कि वो जमीन के लिए इन्कार कर दे कि वहां नग्न कोई नहीं हो सकेगा, उसके हुक्म में भी कोई बुराई नहीं है, जमीन उनकी है, हमारे पास अपनी कोई जमीन नहीं है। यहाँ इस पैलस होटल में, जहां व्यवस्था की गई है, होटल व्यवस्थापकों की भी मजबूरी है, वे भी साहस नहीं जुटा सकते कि नग्न होने का मौका दें, क्योंकि उनके लिए सवाल व्यवसाय का है। तो इसलिए मजबूरी थी कि सुबह की नग्नता पर प्रतिबन्ध लगा देना पड़ा। लेकिन इससे आप ये न समझें कि हमने कोई साधना की पद्धति बदल दी। और इससे आप ये भी न समझें कि सरकार के सामने कोई हम झुक गये (तालियां) ये सारी बातें नहीं हैं, न तो कोई झुकने का सवाल है, न कोई व्यवस्था बदलने की बात है। सरकार ने हमें एक सुविधा ही दी और उससे लाभ ही होगा कि हम अपनी ही व्यवस्था शीघ्र कर पायेंगे जहां किसी का कोई प्रतिबन्ध न हो—(तालियां) सरकार की अपनी मजबूरियां हैं उसके ऊपर अपने दबाव हैं समाज के, सरकारों के, समूह के, लेकिन हमारी निजी व्यवस्था हो तो कोई दबाव डाला नहीं जा सकता। वह हमारी निजी व्यवस्था होगी, उसके भीतर जो नग्न

होना चाहते हैं, हो सकते हैं, वो कोई पब्लिक कोई सार्वजनिक जगह नहीं होगी। ये होटल है और सार्वजनिक जगह है, और लोग भी आ सकते हैं। तो जहां और लोग भी आ सकते हैं, वहां और लोगों का ध्यान भी रखना जरूरी है। और फिर जीवन को बदलने की जो भी प्रक्रियाएं हैं वे आम तौर से हमेशा ही समूह के विपरीत पर जाती हैं। नग्नता का ही सवाल है, नग्नता तो केवल प्रतीक है। हम जो भी कर रहे हैं, वो समूह की धारणाओं के प्रतिकूल पड़ेगा ही। क्योंकि समूह जीता है घोंघे की भांति, बिना सोचे समझे। समूह जीता है परम्परा की लीक पर जो परम्परा कहती है उसे ठीक मानता है, चाहे उसे ठीक मानने के कारण उसे कितना ही दुख झेलना पड़ता है, उसे ख्याल भी नहीं होता कि मेरी मान्यताएं ही मेरे दुख का कारण हैं। जो लोग भी जीवन में क्रान्ति करने को उत्सुक हैं, उन्हें समूह की धारणाओं के पार तो उठना ही पड़ता है। संन्यास का यही अर्थ है। संन्यास का अर्थ समाज को छोड़ना नहीं है क्योंकि समाज को तो छोड़ा जा नहीं सकता। संन्यास का अर्थ है, समाज की धारणाओं के पार उठना। वो जो समाज जिसको ठीक समझता है, अगर वो अनुभव से ठीक, अनुभव से ठीक न मालूम पड़े तो उससे भिन्न की खोज करना। लेकिन फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिन के बीच हम जीते हैं, उनकी मान्यताएं, उनकी धारणाएं, हम अपने लिए तो छोड़ सकते हैं लेकिन उनकी धारणाओं को हम तोड़ें, वो उचित नहीं है। हम अपने लिए उनकी धारणाएं तोड़ सकते हैं, हम धारणाओं से मुक्त हो सकते हैं, वो हमारी निजी स्वतन्त्रता है। लेकिन मैं आपसे नहीं कहूंगा कि आप सड़क पर आकर नग्न खड़े हो जायें, क्योंकि सड़क आपकी नहीं है और सड़क के आस-पास रहनेवाले जो लोग हैं, उनको किसी भी बात से दुख हो, ऐसा कोई भी काम करना उचित नहीं है। लेकिन मैं सड़क के लोगों से भी ये कहना चाहता हूं कि उनका भी ये हक नहीं है कि एकान्त निर्जन में, अपनी व्यवस्था के भीतर नग्न खड़ा हो तो, उसमें वो अड़चन पैदा करें। (तालियां) व्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्य होना जरूरी है। लेकिन व्यक्ति की स्वतन्त्रता का कभी भी ये अर्थ नहीं है कि वो स्वतन्त्रता स्वच्छंदता हो जाए। तो अगर मैंने कहा भी है कि सुबह के ध्यान में तुम नग्न हो सकते हो, तो वो तुम्हें कोई नग्न होने की छूट नहीं दे दी है कि तुम कहीं भी नग्न हो सकते हो। और अगर तुम कहीं भी नग्न होना चाहो

तो उसका अर्थ ही ये हुआ कि तुम्हें ध्यान में रस नहीं है, तुम्हें नग्नता में रस है, वो रोग है, फिर तो रोग हो गया, उल्टा रोग हो गया। कोई वस्त्रों के दीवाने हैं तुम नग्नता के दीवाने हो गए उसमें कुछ फर्क न रहा। नासमझी उल्टी हो गई। तुम शीर्षासन करके खड़े हो गये। कोई पागल है, वो कहता है वस्त्र उतारने ही नहीं हैं चाहे कुछ भी हो जाए।

मैंने एक ईसाई साध्वी के संबंध में पढ़ा है कि वो अपने स्नानगृह में भी वस्त्र पहिन के ही स्नान करती थी। तो साथी-संगियों ने कहा कि तू बिलकुल पागल है, स्नानगृह में तो तेरे अतिरिक्त कोई होता नहीं, तो वहां कपड़े पहने स्नान करने का क्या अर्थ है, स्नान का तो मजा ही चला गया। तो उस साध्वी ने कहा, जब से मैंने बाईबल में ये पढ़ा है कि परमात्मा तुम्हें सब जगह देख रहा है, तब से मैं बाथरूम में भी नग्न नहीं हो पाती। ये एक पागलपन है। अगर परमात्मा सभी जगह देख रहा है तो कपड़ों के भीतर नहीं देख सकता ? उसे कपड़े क्या अड़चन देंगे, जब दीवाल अड़चन नहीं दे रही, तो कपड़े क्या अड़चन देंगे और परमात्मा भी पीपिंग टाम है कि हर किसी के बाथरूम में झांक रहा है। तो रुग्ण है फिर तुम्हारा परमात्मा भी। आदमी खुद रुग्ण हो तो वो अपने परमात्मा को भी रुग्ण कर लेता है। तुम्हारे रोग तुम्हारे देवी देवताओं पर हावी हो जाते हैं क्योंकि तुम्हारे ईश्वर की धारणा भी तुम्हीं तो निर्मित करते हो। अगर घोड़े ईश्वर की धारणा बनायें तो उसका चेहरा आदमी जैसा नहीं बनायेंगे— घोड़े जैसा ही बनायेंगे। अगर नीग्रो ईश्वर बनाते हैं तो उसे काला ही चित्रित करते हैं, ईश्वर के होंठ लम्बे और बाल घुंघराले बनाते हैं। अगर चीनी ईश्वर को बनाते हैं तो उस के गाल की हड्डियां निकालते हैं। चपटी नाक रखते हैं। हम अपने ईश्वर को अपनी ही शक्ल में बनाते हैं, तो हमारे जो रोग होते हैं, वो हमारे ईश्वर पर भी हावी हो जाते हैं। अब ये आदमी एक दूसरे के बाथरूम में झांक के जरूर देखना चाहते हैं। ये आदमी का रोग है। इनका ईश्वर भी ये ऐसा बना लेते हैं जो सब जगह झांकता है।

नग्न होने का मोह अगर पैदा हो जाए, तो वो भी रोग है, बीमारी है। ध्यान रहे आपका नग्न होना एक बात है और आप दूसरों को नग्न होके दिखाएं, ये दूसरी बात है, इन दोनों में फर्क है। आप का नग्न होना सहज हो सकता है। लेकिन आप नग्न होकर दूसरे को दिखाने में उत्सुक हो कि कोई देखे तो मनोविज्ञान में वे उसे

कहते हैं (एक्जीबीशनिस्ट) वो प्रदर्शनवादी जो है वो रोगी है। इसको थोड़ा समझें। मनोविज्ञान दो तरह की बीमारियां बताता है। इस संबंध में एक को वो कहता है (वोयूर) दूसरा नग्न हो, ऐसा देखने में रस लेना, एक को कहता है (एक्जीबीशनिस्ट) हम नग्न हों और दूसरे देखें, इसमें रस लेना। ये दोनों बीमारियां हैं। ये दोनों सहज नहीं हैं। पुरुष अक्सर (वोयूर) होते हैं। पुरुषों को जो बीमारी होती है वो झांक कर स्त्रियों को देखने की होती है, स्त्रियां (एक्जीबीशनिस्ट) होती हैं। उनकी जो बीमारी होती है वो ये होती है कि उनको कोई झांक के देखे। इसलिए स्त्रियाँ सारा उपाय करती हैं, ऐसे वस्त्र पहनती हैं, ऐसे गहने लगाती हैं, ऐसा सारा इंतजाम करती हैं, कि कोई देखे। और पुरुष सारा इंतजाम करते हैं कि किस भांति देखें। मगर ये दोनों रोग हैं। और आप जान के हैरान होंगे कि दोनों रोग ही वस्त्रों के कारण पैदा हुए। अगर आप एक आदिवासी समाज में चले जायें, जहाँ पुरुष स्त्रियां नग्न हैं, वहां न (वोयूर) होता है और न वहां (एक्जीबीशनिस्ट) होते हैं। वहां न कोई देखने में उत्सुक होता है क्योंकि देखने को बचा क्या है जिसमें उत्सुकता हो, सभी नग्न हैं। देखने को है क्या? देखने की उत्सुकता तो जब कुछ छिपाया हो तब होती है। जब बातें खुली ही हों तो देखने का क्या है। तो आदिवासी समाज में जहाँ स्त्री पुरुष नग्न हैं, न तो कोई देखने में उत्सुक है, न कोई दिखाने में उत्सुक हैं। देखने दिखाने का रोग वस्त्रों के साथ पैदा हुआ है। ये रोग कितना बढ़ सकता है इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कितने चित्र, कितनी कहानियां, कितनी फिल्में, कितनी पत्रिकाएं सिर्फ इसलिए छपती और बिकती हैं कि उनमें नग्न चित्र छपते हैं। और सारी दुनियां की सरकार रुकावट लगाती है कि ये न हो, पर ये नहीं रुक पाता अंडर ग्राऊण्ड प्रेस हैं, भारी प्रचार चलता है, करोड़ों रुपयों का साहित्य नीचे-नीचे बिकता है। कोई दुनियां की ताकत उस पर रोक नहीं लगा पाती बल्कि जितनी रोक लगायी जाती है, उतना वो सारा का सारा साहित्य ब्लेक मार्केट में बिकता है। पर ये बड़े आश्चर्य की बात है कि आदमी क्यों किसी को नग्न देखने में इतना उत्सुक है। आप जान के चकित होंगे कि आप उन हिस्सों को देखने में उत्सुक होते हैं जो ढके हैं। जो उघरे हैं उनको देखने में उत्सुक नहीं हैं। जिन लोगों ने वस्त्रों की ईजाद की, शायद आप लोग सोचते होंगे, कि वे लोग काम वासना के बड़े विपरीत थे,

इसलिये ईजाद की तो आप गलती में हैं। जिन्होंने वस्त्रों की ईजाद की उन्होंने आदमी को कामातुर बनाने का बड़ा भारी उपाय किया। क्योंकि जो अंग छिपा दिये गये हैं, उनमें बहुत रस पैदा हो गया, रुग्ण रस पैदा हो गया। इस रस का और कोई भी कारण नहीं है। शरीर सहज बात है, लेकिन उसको छिपा छिपा के हमने निषेध कर-कर के, बहुत रस पैदा कर लिया है। सारी दुनिया इस रस से ग्रसित हो गई है। आप दोनों बातें ख्याल में रखें न तो दूसरे को नग्न देखने में उत्सुकता लेनी कोई समझदार व्यक्ति की बात है और न ही कोई उसे नग्न देखे, इसमें कोई रस लेना किसी समझदार व्यक्ति की बात है। ये दोनों रोग हैं। और ये दोनों रोग आपके वस्त्रों के साथ ही रख दिये जाने चाहिए, तो ही आपकी नग्नता में अध्यात्म प्रविष्ट होता है। तो ही आपकी नग्नता अश्लील नहीं रह जाती, लेकिन ये तो आपकी बात है। समाज इसके लिये राजी होगा, जरूरी नहीं है क्योंकि समाज तो उन्हीं रुग्ण बातों से भरा हुआ पड़ा है। अखबार राजी होंगे ये सवाल नहीं है, अखबार छापने वाला पत्रकार, वो सब इन्हीं रुग्ण बातों से भरे पड़े हैं। उनकी भी तकलीफ वही है। उनकी भी अड़चन वही है। सरकार राजी हो जायेगी ऐसा नहीं, क्योंकि सरकार के पदों पर जो लोग बैठे हैं, उन्हें कोई अध्यात्म की जरा सी झलक भी होती तो वो वहां नहीं होते। इसलिये वो कोई राजी हो जायेंगे, ये सवाल नहीं। उनको राजी करने की कोई जरूरत भी नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। उनकी तरफ ध्यान भी देने की जरूरत नहीं है कि वो क्या कर रहे हैं। लेकिन इतना तय है कि वो बाधा और अड़चन डाल सकते हैं। लेकिन बाधा और अड़चन वे तभी डाल सकते हैं जब आप भी नग्नता को रोग की तरह पकड़ लें। नहीं तो वे भी बाधा और अड़चन नहीं डाल सकते। ये हमारी निजी साधना की बात है और निजी स्थल पर है। मैं तो पक्ष में नहीं हूं इस बात के भी कि जैन मुनि भी सड़क पर नग्न निकले क्योंकि सड़क निकलने वाले की नहीं है—सड़क पर जो लोग रहते हैं उनकी भी है। जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी भी है, अगर वो नहीं देखना चाहते हैं तो उनकी आंखों पर हमला करना उचित नहीं है। वो ठीक हैं या गलत, ये सवाल नहीं है, लेकिन आंख मेरी है, और मैं आपको नग्न देखना नहीं चाहता हूं तो आपको ऐसी जगह खड़े नहीं होना चाहिए, जहां से आप मुझे नग्न दिखाई पड़ें और आप ऐसी जगह खड़े होते हैं तो उसका मतलब ये है

कि आपको नग्न होने में रस कम है, कोई आपको नग्न देखे इसमें ज्यादा रस है। तब तो बात ही व्यर्थ हो गयी। तब तो ये हुआ कि हम एक रोग को छोड़कर दूसरे रोग में पड़ गये। कुएं से बचे तो खाई में गिर गये। मैं कोई नग्नतावाद का प्रचारक नहीं हूं लेकिन नग्नता का एक उपयोग हो सकता है साधना में, उसमें जरूर मेरी सहमति है। लेकिन समाज का ध्यान रखना सदा ही जरूरी है। इसलिए नहीं कि आप समाज से कोई डरते हैं। डर का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन ये तो ऐसा ही हुआ, जैसे कोई हार्न बजा रही हो बस, और आप सामने ही खड़े रहें कि हम डरते थोड़े हैं जो रास्ते से हटें तो आप पागल हैं। हार्न बज रहा हो और कोई बस आ रही हो तो कोई डर की वजह से थोड़े ही हटता है, कि जो हट जाय उसको आप कहेंगे कि डरपोंक है, क्योंकि जब बस आ रही थी, आप हटे क्यों ? जब हार्न बज रहा था तब खड़े रहना तो कोई पागल होता तो खड़ा रहता। जीवन में झुकने की जरूरत नहीं है लेकिन जीवन में व्यर्थ अकड़े रहने की भी कोई जरूरत नहीं है। और दोनों के बीच मार्ग खोज लेना जरूरी है इसलिए, यहां जो एक ही उपाय था कि शिविर हो सकता तो नग्नता पर रोक लगानी जरूरी थी, नहीं तो शिविर नहीं हो सकता था। दोनों में यही उचित पाया कि नग्नता पर प्रतिबंध लगा देना उचित होगा, थोड़ी बाधा तो पड़ेगी लेकिन इस बाधा से इतना नुकसान नहीं होगा, जितना शिविर के न होने से होता। और मैं किसी भी मामले में अन्धा नहीं हूं। और किसी भी मामले में मुझे किसी तरह का पागलपन नहीं है। जो उचित हो, और जो सुगम हो, और जिस भांति अधिक लोगों को लाभ हो सके, सदा उस पर ही विचार कर लेना उचित है।

● संकलन : *मा धर्म ज्योति*
बम्बई

महावीर

मेरी दृष्टि में : भगवान रजनीश

(भगवान श्री द्वारा १७ सितंबर ६९ से २ अक्टूबर ६९ तक श्रीनगर के पास डल झील स्थित शिविर में दिए गए प्रवचन जो 'महावीर मेरी दृष्टि में' प्रकाशित हो चुके हैं, का संक्षिप्त रूपांतरण।)

★ तृतीय पुष्प ★

महावीर को समझने के लिए सहानुभूतिपूर्ण खोज की दृष्टि समझ पाएगी, शास्त्रीय बुद्धि नहीं। महावीर ने जो अनुभव किया है, किसी ने भी जो अनुभव किया, उसे शब्द में कहना कठिन है। जिसे भी कोई गहरा अनुभव हुआ है, वह शब्द की असमर्थता को एकदम तत्काल जान पाता है कि बहुत मुश्किल होगी। परमात्मा का, सत्य का, मोक्ष का अनुभव तो बहुत गहरा अनुभव है। साधारण-सा प्रेम का अनुभव भी अगर किसी व्यक्ति को हुआ हो तो वह पाता है कि क्या कहूं? कैसे कहूं?...नहीं शब्द में नहीं कहा जा सकता। प्रेम के संबंध में अक्सर वे लोग बातें करते रहेंगे जिन्हें प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है।

जितनी गहरी अनुभूति, उतने ही थोथे और व्यर्थ हैं शब्द। जब कोई व्यक्ति अतीन्द्रिय सत्य को जानता है तो सभी इन्द्रियां एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और जवाब देने में असमर्थ हो जाती हैं। क्योंकि शब्द ने नहीं जाना है, जो महावीर ने जाना है। वह जाना है निःशब्द ने। और हमने पकड़ा है शब्द। अब शब्द से हम जहाँ जायेंगे वह वहां नहीं ले जाने वाला है जहां निःशब्द में जाने वाला गया होगा। तो महावीर के पास जो समझा होगा वह मौन में गया होगा। जो नहीं समझा होगा वह गणधर बन गया होगा। अब यह बड़ा उल्टा मामला है। आम तौर से हम सोचते हैं कि महावीर के पास जो गणधर हैं, वे उनके सबसे अधिक समझने वाले लोग हैं। इससे बड़ा झूठ नहीं हो सकता। महावीर के पास जो सबसे ज्यादा समझने वाला होगा वह मौन में चला गया होगा। वह तो गया होगा खोज में वहां। और जो सबसे कम समझने वाला है, वह महावीर क्या बोल रहे हैं, उसको दूसरे तक पहुंचाने की व्यवस्था करने में लग गया होगा। तो गणधर वे नहीं हैं जो महावीर को सर्वाधिक समझ सके। गणधर वे ही हैं, जो महावीर की वाणी का यथार्थ मर्म तो न समझ पाए किन्तु उनके शब्दों को पकड़ बैठे और उनका संग्रह करने में लग गए।

महावीर को उत्सुकता नहीं है शब्द संग्रह की, न बुद्ध को है, न क्राइस्ट को है। महावीर, बुद्ध, कृष्ण किसी ने भी कोई किताब नहीं लिखी। सिर्फ चीन में लाओत्से आखिरी उम्र में जाता था पर्वतों की तरफ तो चीन

के सम्राट ने उससे जाने के पूर्व जबरदस्ती कुछ लिखवाया। कि कहीं ऐसा न हो कि लाओत्से के साथ ही सब चला जाए। तो लाओत्से ने पहला वाक्य लिखा है—"बड़ी भूल हुई जाती है, जो कहना है वह कहा नहीं जाता। और जो नहीं कहना है वही कहा जाएगा। सत्य बोला नहीं जा सकता। जो बोला जा सकता है वह सत्य हो नहीं सकता। बड़ी भूल हुई जाती है। और मैं इसको जान कर लिखने बैठा हूं, इसलिए जो भी आगे पढ़ोगे, इसको जानकर पढ़ना कि सत्य बोला नहीं जा सकता, कहा नहीं जा सकता। और जो कहा जा सकता है, वह सत्य हो नही सकता। 'देट विच केन बी सेड इज नाट दी ताओ' इसे पहले समझ लेना फिर किताब पढ़ना।" तो किसी ने किताब लिखी नहीं, जिसने लिखी उसने प्रश्न चिन्ह पहले लगा दिया। यानी सच तो यह है कि जो समझ जाएगा उसके आगे किताब पढ़ेगा ही नहीं। मामला यह है कि लाओत्से होशियार आदमी मालूम होता है। राजा समझा कि हम चुंगी ले रहे हैं। वह गल्ती में पड़ गया। जो समझेगा वह उसके आगे किताब पढ़ेगा नहीं। बात खत्म हो गई है। जो नहीं समझेगा वह पढ़ डालेगा। उससे कोई मतलब नहीं।

तो ना समझ किताबें पढ़ते हैं, समझदार व्यक्ति रुक जाते हैं। बुद्ध महावीर जैसे लोगों ने किताब नहीं लिखी। कारण हैं बहुत। पक्का नहीं है कि जो कहना है वह कहा जा सकता है। फिर भी कहा। कहने का माध्यम उन्होंने चुना, लिखने का नहीं चुना। इसका भी कारण है। क्योंकि कहने का माध्यम प्रत्यक्ष है आमने-सामने। और मैं गया, आप गए कि खो गया। लिखने का माध्यम स्थायी है, आमने-सामने नहीं है। परोक्ष है। न मैं रहूंगा, न आप रहेंगे, वह रहेगा, वह हमसे स्वतंत्र होकर रह जाएगा। कहने में भूल होती है लेकिन फिर भी सामने है आदमी। अगर मैं कुछ कह रहा हूं, तो आप मुझे देख रहे हैं, मेरी आंख को देख रहे हैं, मेरी तड़फ, मेरी पीड़ा को भी देख रहे हैं, मेरी मुसीबत को भी देख रहे हैं कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि आप थोड़ा समझ जाएं। लेकिन, एक किताब है, न आंख है, न तड़प है, न पीड़ा है। सब साफ-सुथरा सीधा है। फिर, किताब बचती है। इसमें से किसी ने भी यह फिक्र नहीं की कि बचे। इन सबकी फिक्र यह थी कि कह दें तो बात खत्म हो जाए। इससे ज्यादा उसको बचाना नहीं है। लेकिन, बचा ली गई। बचाने वाले लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा

इसको बचाना होगा, बड़ी कीमती चीज है, इसको बचा लो। उन्होंने बचाने की कोशिश की। फिर उनकी बचाई हुई किताब पर किताबें चलती आईं। टीकाएं होती रहीं। और वह बचाना भी महावीर के ठीक सामने नहीं हो सका। उसका कारण है कि शायद महावीर ने इन्कार किया होगा। बुद्ध ने इन्कार किया होगा कि यह सामने न हो। तुम लिखना मत। तो वह तीन-तीन सौ, चार-चार सौ, पांच-पांच सौ वर्ष बाद हुआ, यानी जो भी लिखा गया है सुनकर नहीं लिखा गया है किसी ने सुना है, फिर किसी ने किसी से कहा है। ऐसे दो-चार पीढ़ी बीत गई हैं और कहते-कहते वह लिख गया है। फिर उस पर टीकायें चलती रही हैं, विवाद चलते रहे हैं। वे हमारे पास शास्त्र हैं। अगर किसी को महावीर से चूकना हो तो उन शास्त्रों से सुगम उपाय नहीं। इन शास्त्रों में चला जाए तो वह महावीर तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। तो मैं कोई शास्त्रों से महावीर तक पहुंचने की न तो सलाह देता हूं और न मैं उस रास्ते से उन तक गया हूं और न मानता हूं कि कोई कभी जा सकता है। मैं बिल्कुल ही अशास्त्रीय व्यक्ति हूं। अशास्त्रीय से कहना चाहिए एकदम शास्त्र विरोधी।

(क्रमशः)

● संक्षिप्त संकलन : *आकुल राजेन्द्र*

★ गीत ★

रजनीश से नेहा लगा के, का पायो रे मनवा।
चिन्ता खोयी, उलझन खोयी, खोयो सकल सपनवा॥
आपु तो दूरी देश सिधारे, तड़पत मोर परनवा।
अब तो तू ही बता निर्मोही, रूठूं कि करूं बखनवा॥

● *स्वामी अगेह भारती*, जबलपुर

तुम संग प्रीति लगाकर प्रियतम, रोम-रोम हरसाने ।
श्वास-श्वास में अमृत बरसे, कौन तुझे पहचाने ।।

क्षण : जो भूलते नहीं

जीवन में ऐसे क्षण भी होते ही हैं जिन्हें भूलना संभव नहीं होता। ऐसे ही एक क्षण की चर्चा आज करूं।

तब भगवान श्री जबलपुर ही रहते थे। एक बार मैंने पूछा कि प्रभु जी, सुना है बम्बई में आपने कोई प्रवचन दिया है जिसमें बड़ी देर तक किसी नदी के संबंध में चर्चा किया है। वह किस नदी की बात है ?

भगवान श्री ने कहा : 'हरमन हेस की एक किताब है 'सिद्धार्थ'। उसको पढ़ना तो सब पता चल जायगा। 'सुषमा साहित्य मंदिर' में पता कर लेना शायद हिन्दी में भी अनुवाद हो गया हो। और न मिले तो बताना मैं बाहर जाता रहता हूं, ले आ दूंगा।'

कुछ माह बाद मेरे प्रभु कहीं जा रहे थे। रेलवे स्टेशन पर अनेक प्रेमी बिदा देने आये थे। मैं भी था। प्रभु जी बुक स्टाल पर किताबें देख रहे थे। क्रांति जी, अरविन्द जी, मैं व अनेक अन्य मित्र उस जगह पर खड़े थे जहाँ 'लगेज' था व ट्रेन आने पर जहां वातानुकूल डिब्बा होगा। तभी एक मित्र आए और उन्होंने मुझे कहा कि तुमको प्रभु जी याद कर रहे हैं। मैं विव्हल हो उठा और लगभग भागता हुआ बुक स्टाल पर पहुंचा। प्रभु जी ने कहा—"हरमन हेस की किताब तुम्हें मिल गई या नहीं ? न मिली हो तो अंग्रेजी में यहां उपलब्ध है, ले ली जाय ?" मैंने कहा : "प्रभु जी किताब मुझे सुषमा साहित्य मंदिर से मिल गई थी और मैंने पढ़ भी ली है। अद्भुत किताब है !"

आज उस क्षण के स्मरण मात्र से असीम आनंद में डूब जाता हूं। और सच, प्रभु का जो प्रेम मिला है वही मेरे जीवन का अवलम्बन है व सब कुछ है। और तो कुछ भी नहीं है।

• *स्वामी अगेह भारती,*
जबलपुर

आतुर है.....

आतुर है समीर...बहने के लिए
आतुर है फूल...खिलने के लिए
आतुर है नदियाँ...सागर मिलन के लिए
आतुर है बादल.. बरसने के लिए
आतुर है पंछी...गाने के लिए
एक अनजान अजनबी आवाज आई...
'क्या सिर्फ मनुष्य ही आतुर नहीं है ?'
एक चिर परिचित आवाज ने उत्तर दिया,
'आज तो आतुर है मनुष्य भी...'
'किसलिए ?'
'अमृत-पथ यात्रा के लिए,
भर उठे हैं प्राण उसके सत्य को पाने के लिए.
क्योंकि आज बनकर रजनीश
स्वर्ग से उतरा फरिश्ता !'
बहने लगी हवाएं ले के दिव्य सुगंध को...
खिलने लगीं फूल क्यारियां आनंद विभोर होकर
सागर की ओर बहती नदियां
पैदा करने लगीं मधुर संगीत...
बरसने लगे बादल रिमझिम-रिमझिम...
छेड़ दिया संगीत पंछी आत्माओं ने...
पृथ्वी पर छा गया बसन्त...
चल पड़े अमृत-पथ के यात्री—पहनकर गैरिक वस्त्र
कण्ठ में रखकर स्वर्ग के फरिश्ते की तसवीर...
बन गई बीसवीं सदी भाग्यवान
बन गई मनुष्य जाति सौभाग्यवान !

• मा योग गीता
राजकोट

With Best Compliments

From :-

ASHOK & COMPANY

Office : WZ-76, Siri Nagar, Shakur Basti, DELHI-34

PHONE : 568403

(Manufacturers of High Class Woven Labels)

REPRESENTATIVE :

SWAMI DHARM SWABHAV

(Raj Chaurasia)

30, C. S. P., Sufdarjung Enclave,
NEW DELHI-16

'भोग के बाद त्याग का मूल्य है।'

इस अंक में विशेष :

गीता अध्याय ११ पर

भगवान श्री का १२ वां प्रवचन

(पृष्ठ १९ से ४३)

★

युक्रांद

जून १९७३